योगविद्या

वर्ष 12 अंक 5
मई 2023

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2023

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट:
स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

सत्यम् के प्रति उनके गुरु, स्वामी शिवानन्द जी के उद्गार

23 मई 1957 की रात के सत्संग में स्वामी शिवानन्द जी के आदेश से स्वामी सत्यम् का प्रवचन हुआ जिसके बाद उन्होंने गुरुदेव को प्रणाम किया। गुरुदेव ने हँसकर उनकी जेब में थपकी देकर कहा, 'लगता है सत्यम् की जेब भारी है।' 'संन्यासी की जेब खाली है स्वामीजी, सत्यम् तो आपसे ही झोली भरवा कर यात्रा करेगा', कहकर हँसने लगे। गुरुदेव भी खूब हँसे, फिर कहा, 'कीर्तन करो जी, सत्यानन्द महाराज की गंगोत्री यात्रा के उपलक्ष्य में', और कीर्तन के बाद 'जय हो, जय हो, स्वामी सत्यानन्द जी की और उनके सहयात्रियों की जय हो, माँ गंगोत्री की जय हो', कहते हुए चले गये। सब विभोर हो देखते ही रह गये और बहुमूल्य रत्नों से सत्यम् की जेब ही क्या, पूरी झोली भर गई!

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 12 अंक 5 मई 2023
(प्रकाशन का 61 वाँ वर्ष)

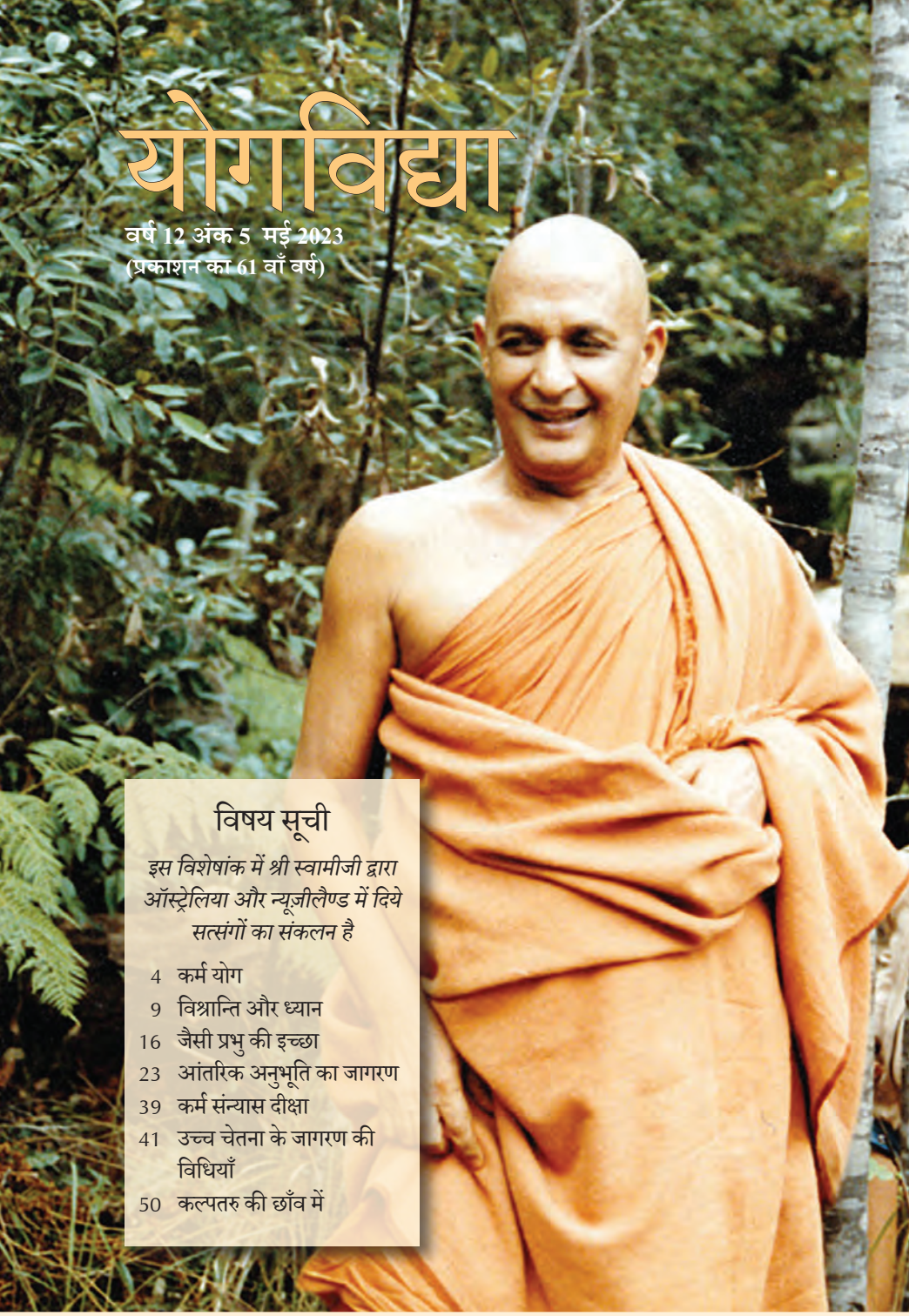

विषय सूची

इस विशेषांक में श्री स्वामीजी द्वारा ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड में दिये सत्संगों का संकलन है

4 कर्म योग
9 विश्रान्ति और ध्यान
16 जैसी प्रभु की इच्छा
23 आंतरिक अनुभूति का जागरण
39 कर्म संन्यास दीक्षा
41 उच्च चेतना के जागरण की विधियाँ
50 कल्पतरु की छाँव में

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

कर्म योग

आज हम यहाँ 'दिव्य जीवन संघ' की सिडनी शाखा के तत्त्वावधान में मिल रहे हैं। आज मुझे उस समय की याद आती है जब सन् 1943 में मैं उन्नीस वर्ष की उम्र में स्वामी शिवानन्द जी के ऋषिकेश में नवनिर्मित आश्रम पहुँचा था। आश्रम जंगल में था जहाँ साँप, बन्दर, मच्छर और बिच्छू पाए जाते थे। स्वामी शिवानन्द जी और हम सबको अपना भोजन प्राप्त करने के लिये दो-ढाई मील जाना पड़ता था। सप्ताह में हमें एक बार थोड़ी-सी सब्जी मिलती थी। उन दिनों हम लोगों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था और न ऋषिकेश में अधिक लोग ही रहते थे। अब तो वह दिव्य जीवन संघ के कार्यालय तथा अनेक आश्रमों सहित एक दर्शनीय शहर हो गया है।

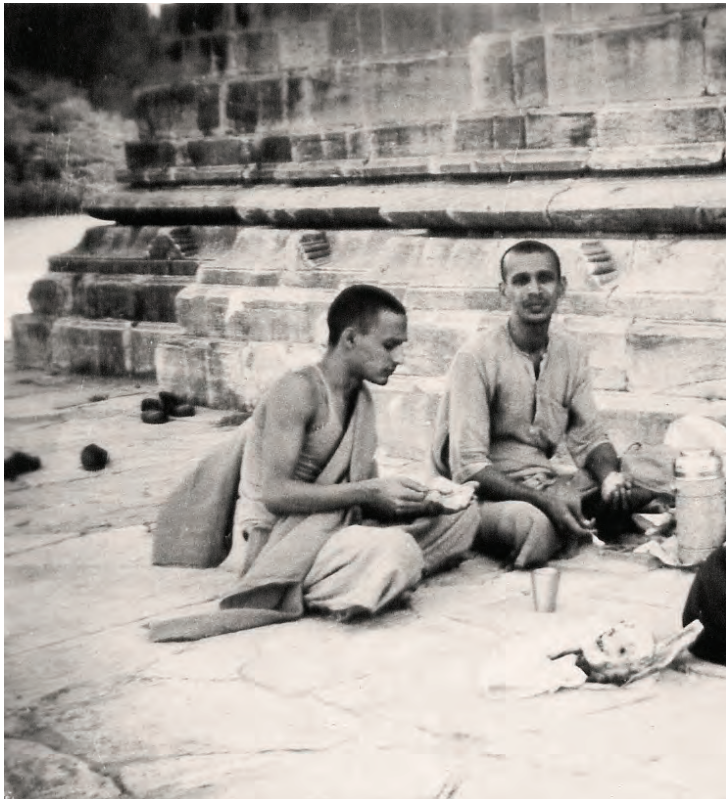

मैं स्वामीजी के पास एक उद्देश्य को लेकर आया था। अपने अनुमान के अनुसार मैं ध्यान की उच्च अवस्था को प्राप्त हो चुका था। जब मैं ध्यान में जाता तो बेहोश-सा हो जाता, जिसे मैं समाधि मान बैठा था। एक बार अपने जन्म स्थान में मेरी भेंट एक महात्मा से हुई, जो कैलाश की लम्बी यात्रा पर निकले हुए थे। मैंने उनसे अपनी उपलब्धि का जिक्र किया और उन्होंने मुझे ध्यान में बैठने के लिए कहा। तुरंत ही मैं अपनी पूरी चेतना खो बैठा। यह देख उन्होंने कहा कि तुम ठीक रास्ते पर आगे बढ़ रहे हो। फिर भी एक सवाल बना ही रहा कि यह बेहोशी क्या चीज है। यह ठीक था कि मैं बाह्य जगत् की चेतना खो देता था, किन्तु आन्तरिक सजगता भी चली जाती थी। मैंने उन महात्मा से आंतरिक सजगता बनाये रखने की तरकीब पूछी। इसके विषय में वे कुछ नहीं जानते थे। उन्होंने कहा, 'ध्यान के विषय में तुम्हारी सब प्रक्रियाएँ ठीक-ठीक हैं। एक जो आन्तरिक चेतना की कमी रह गई है उसकी पूर्ति केवल गुरु के द्वारा ही हो सकती है।' तब मैं गुरु की खोज में निकल पड़ा।

मैं ऋषिकेश आया और स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम में प्रविष्ट हुआ। सर्वप्रथम बात जो उन्होंने कही वह थी, 'अपने कर्मों का पूर्ण क्षय करो।' मैंने अपने ध्यान की उपलब्धि तथा कठिनाई के बारे में उनसे सब बातें बतलायीं। मेरी बातें धैर्यपूर्वक सुनकर उन्होंने कर्मों को क्षय करने की बात पुनः जोर देकर दुहराई।

आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि अपने कर्मों का क्षय करने में मुझे बारह वर्षों का समय लगा, जिसमें से नौ वर्षों तक मैं स्वामीजी के आश्रम में रसोइया, मेहतर, टायपिस्ट, सचिव, संचालक तथा उनके आध्यात्मिक सहायक के रूप में कार्य करता रहा। हर जगह स्वामीजी ने अनेक तरह से मेरी परीक्षा ली। उन्होंने आश्रम के कर्मचारियों को मेरा अपमान करने तथा मुझसे अशिष्ट व्यवहार करने को कहा। कई बार तो मैं इन परीक्षाओं में असफल रहा, किन्तु अन्ततोगत्वा मैंने अपने कर्मों को पूर्णरूपेण क्षय कर डाला। कभी गुरुदेव मुझसे कहते, 'यह लड़का ठीक नहीं है, तुम्हें इसे बाहर निकाल देना चाहिए', और चूँकि मेरे गुरुजी ने कहा है, मैं वैसा कर भी देता था, परन्तु आत्मावलोकन के क्षणों में मैं पाता कि नौकर के व्यवहार से मुझ पर प्रतिक्रिया होना दिव्य जीवन की परंपराओं के अनुकूल नहीं था।

जीवन में व्यवहार के अनेक मानसिक पहलू होते हैं। एक तो मानवीय पक्ष है जिसमें अनेक अच्छे तथा बूरे पारस्परिक सम्बन्धों का समावेश है।

दूसरा पक्ष दिव्य जीवन का है, जिसमें हर बात एक उच्च मापदंड द्वारा परखी जाती है। मानवीय मापदंड यह होता है कि जब आपको कोई आघात पहुँचाता है तो आप भी उसे उतना ही आघात करें, अर्थात् ईंट का जवाब पत्थर से दें, परन्तु दिव्य जीवन के मापदंड द्वारा यदि आपको कोई आघात पहुँचाता है, तो बिना किसी प्रतिक्रिया के उसे धैर्यपूर्वक स्वीकार कर लेना होता है। स्वामी शिवानन्द जी का यह विश्वास तथा आदेश था कि यदि कोई योगी उच्च आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ना चाहता है, तो उसे ध्यान के साथ दिव्य जीवन के उच्च आदर्शों का भी अनुसरण करना चाहिए। उच्च नैतिक जीवन स्वामीजी के विचार से न केवल समाज के साथ सामंजस्य, बल्कि आत्मशुद्धि का अनिवार्य साधन है। मुझे चोरी नहीं करनी चाहिए, न केवल इसलिए कि इसके परिणामस्वरूप मुझे जेल की सजा होगी, बल्कि यह एक अपवित्र कार्य है। मुझे दूसरों के प्रति अहिंसा, दया तथा करुणा का व्यवहार सिर्फ इसलिए नहीं करना चाहिए कि यह नैतिकता का तकाजा है, बल्कि इसके द्वारा मेरे कर्मों का क्षय होगा और मेरा हृदय शुद्ध होगा।

इस तरह दैनिक व्यवहार का यह एक मार्ग है, जिसके द्वारा कर्मों का क्षय होता है। आंतरिक प्रकाश की प्राप्ति के लिए इन्द्रियों की शुद्धि एक अनिवार्य प्रक्रिया है। गुरुजी मुझसे कहा करते थे, 'देखो तुम ध्यान की उच्च अवस्था में पहुँच चुके हो, किन्तु तुम्हारी बाह्य चेतना के साथ आन्तरिक चेतना भी लुप्त हो जाती है। ऐसा क्यों? तुम्हारे भीतर सीमा-रेखा के रूप में कुछ बाधाएँ विद्यमान हैं। तुम्हें इस सीमा रेखा को लाँघना होगा। यह तभी हो सकेगा जब तुम अपने कर्मों का पूर्णरूपेण क्षय कर लोगे।'

स्वामीजी के साथ अपने लम्बे निवास काल में मैंने प्रतिदिन आघात, अपमान, वेदना, कठिनाई तथा आनन्द, सभी को समान भाव से ग्रहण करने का प्रयास किया। इसके बाद उन्होंने कहा, 'अब तुम्हारी साधना पूर्ण हो गई, तुम आश्रम छोड़ सकते हो। अब तक तुम अपने आध्यात्मिक बंधुओं के साथ रहकर स्वयं को आजमाते रहे, अब संसार में जाकर देखो कि तुम किस प्रकार रह पाते हो।'

आश्रम छोड़ने के बाद आठ साल तक मैं भारत के विभिन्न राज्यों, नगरों और गाँवों में पैदल, बैलगाड़ी, मोटर और रेलगाड़ी से घूमता रहा। कभी-कभी लोग मुझ पर व्यंग्य प्रहार करते हुए कहते, 'देखो यह नौजवान किस प्रकार अपने बहुमूल्य जीवन को बरबाद कर रहा है।' तब मैं स्वयं से पूछता, 'इस

बात की तुम्हारे ऊपर कैसी प्रतिक्रिया हो रही है?' मुझे अक्सर भूखे ही रहना पड़ता था, क्योंकि मैं भिक्षा पर निर्वाह करता था। जब मैं किसी शिक्षित गृहस्थ से भिक्षा की याचना करता तो वह उपेक्षापूर्वक 'बाहर निकल जाओ' कहकर मुझे अपमानित करता। कभी कोई मित्र मुझे वातानुकूलित डिब्बे का टिकट लेकर देते और जब मैं रेलगाड़ी में चढ़ता तो कुछ भद्र, सुशिक्षित लोग मुझसे कहते, 'देखिए स्वामीजी यह वातानुकूलित डिब्बा है।' मैं कितना अधिक अपमानित अनुभव करता! मैं यह सोचता कि मुझे भी वातानुकूलित ऊँचे दर्जे में यात्रा करने का उतना ही अधिकार है जितना इन महानुभावों को है।

मैं निरन्तर आत्मावलोकन द्वारा यह जानने का प्रयत्न करता कि जीवन के इन घात-प्रतिघातों की मेरे मन पर कैसी प्रतिक्रिया हो रही है। प्रतिक्षण मैं स्वयं में दिव्य जीवन की पूर्णता स्थापित करने की दिशा में प्रयत्नशील रहने लगा। मैं दावा तो नहीं करता कि मैंने पूर्णता प्राप्त कर ली है, किन्तु यह मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि हर साधक को अपने दैनिक योगाभ्यास के साथ इस उच्च साधना का भी अभ्यास करना चाहिए। यह साधना ध्यान की पूर्णता के बाद तथा समाधि के पूर्व की अवस्थाओं के बीच बाधक सीमा को भंग करने के लिए बहुत अनिवार्य है। ध्यान की पूर्णता के बाद भी कुछ बाधाएँ रह जाती हैं। उनके पार जाना असम्भव नहीं तो अति कठिन अवश्य है।

इस विषय में स्वामी शिवानन्द जी कहा करते थे कि इस बाधा को सफलतापूर्वक लांघने के लिए साधक का जीवन इतना उच्च स्तर का शुद्ध तथा सधा हुआ हो कि उस पर दैनिक जीवन के घात-प्रतिघात, परिवार के सदस्यों, मित्रों या शत्रुओं के अप्रत्याशित व्यवहार अथवा जीवन में लगे किसी गहरे सदमे या झटके आदि का कोई प्रभाव न पड़े। इसे वे एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाते, 'ऐसा समझो कि एक हष्ट-पुष्ट नवयुवक खड़ा है। उसकी एक छोटी बच्ची है। वह छोटी बच्ची पिताजी का ध्यान आकर्षित करने के लिए पिताजी-पिताजी कहकर पैंट खींचती है। पिता यह सब जानते हैं, किन्तु वे उस बच्ची के पैंट पकड़कर खींचने से गिरते नहीं हैं, क्योंकि वह बच्ची बहुत छोटी है। इसी तरह जीवन की कठिनाइयों को छोटे बच्चों के समान समझो। वे हमारा ध्यान तो आकर्षित करें, हमें उनका अनुभव भी हो, किन्तु हम अविचलित रहें।'

यदि आप पूर्ण विवेक, सजगता, आत्मावलोकन एवं आत्म-विश्लेषण की इस मानसिक अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, और यह मात्र बौद्धिक नहीं बल्कि आपकी एक स्वाभाविक अवस्था एवं अभिव्यक्ति बन जाती है, तो आप पाएँगे कि आपका ध्यान स्वतः ही लगने लग जाएगा। यह बहुत कुछ वैसा ही है जैसे आप पेट्रोल के डब्बे का ढक्कन खोलें तथा उसके ऊपर माचिस की जलती हुई तीली ले जाएँ। क्षण भर में सब कुछ जलकर समाप्त हो जाएगा।

मेरी राय में ध्यान की प्रक्रिया बड़ी सरल है, परन्तु कठिनाई यह है कि हमारा जीवन, मनोदशाएँ, विचारधाराएँ और प्रतिक्रियाएँ, ध्यान के नियमों के अनुकूल नहीं हैं। इसे सुलझाना आसान नहीं है, तथापि योग एक जीवन दर्शन के रूप में आपकी सहायता कर सकता है। आपका जीवन दर्शन चाहे किसी धर्म, सम्प्रदाय, योग अथवा भक्ति पर आधारित हो, परन्तु यह अनिवार्य है कि इसका उद्भव हृदय की गहराई से हो, ताकि जिस दिन भी आप ध्यान में बैठें, आपकी चेतना एक झटके के साथ समाधि के उच्चतम बिन्दु तक पहुँच जाए। यही दिव्य जीवन तथा योग का वास्तविक संबंध है। अतः अपने दैनिक योगाभ्यास के साथ दिव्य जीवन की साधना का थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करते रहिये। अन्यथा जब आप ध्यान की उच्च अवस्था में प्रविष्ट हो जाएँगे तो पाएँगे कि आप आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं।

– 12 मई 1968, दिव्य जीवन संघ, सिडनी, ऑस्ट्रेलिया

विश्रान्ति और ध्यान

योग में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है मानसिक शान्ति, लेकिन इस दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं जो हमें वांछित मानसिक सुख-शान्ति प्रदान कर सके। हममें से बहुतों को मानसिक बेचैनी का अनुभव होता है और बहुतों को नहीं। मन जैसे-जैसे विकास की एक प्रक्रिया से गुजरता है, भीतर में गड़बड़ी मचती है, किन्तु अधिकतर लोग जानते ही नहीं कि यह कष्ट भीतरी है। वे सांसारिक बातों को ही इसका कारण मानते हैं, जैसे कि उनका पुत्र आज्ञाकारी नहीं है, रुपये-पैसे का अभाव है या पति-पत्नी में पट नहीं रही है वगैरह।

इस प्रकार हम आन्तरिक कष्ट का कारण बाहरी वातावरण को मानते हैं। तथापि योग में हम इस यथार्थ निर्णय पर पहुँचे हैं कि उथल-पुथल, अशांति और बाधा का कारण भीतरी है। अतएव सुधार की चेष्टा तथा बाहरी वस्तुओं के पीछे अपनी शक्ति नष्ट करने के बदले हम अपने भीतर में गहरी डुबकी लायें। एक बार जब हम जान लेते हैं कि अपने भीतर की जाँच-पड़ताल कैसे करें, तब अपने व्यक्तित्व की समस्याओं को हल कर लेना भी हम जान ही लेंगे। फिर भी मन की प्रवृत्तियों को ठीक से केवल समझ लेना ही योग नहीं है। योग तो है मन के मूल पदार्थ का सम्यक् बोध। मन के मौलिक पदार्थ को ठीक से समझने हेतु यह महत्त्वपूर्ण तथा अनिवार्य है कि हम कुछ समय तक स्थिर रहने तथा भीतर की ओर झाँकने में सक्षम हों।

तनावों के सन्दर्भ में विश्रान्ति

योग की मुख्य विषय-वस्तु है मन। शरीर तो मन का निवास-स्थान है। चूँकि शरीर मन का वाहक है, उसे भी योगाभ्यासों के दायरे में शामिल कर लिया गया है, परन्तु केवल शरीर की देखभाल कर तथा मन के मौलिक ढाँचे की उपेक्षा कर हम योग के मूल उद्देश्य को ही भूल रहे हैं। हम स्वयं को विश्रान्त करना चाहते हैं, किन्तु वस्तुतः हम क्या करने की चेष्टा कर रहे हैं? क्या इतना ही यथेष्ट है कि कुछ गोलियाँ लेकर हम रात में आराम से सो जायें? क्या वह विश्रान्ति है? यदि वह विश्रान्ति नहीं है तो आखिर विश्रान्ति है क्या? विश्रान्ति में क्या मन सक्रिय रहता है या निष्क्रिय, सचेत रहता है या अचेत, आगे की ओर बढ़ता हुआ रहता है या पीछे की ओर हटता हुआ?

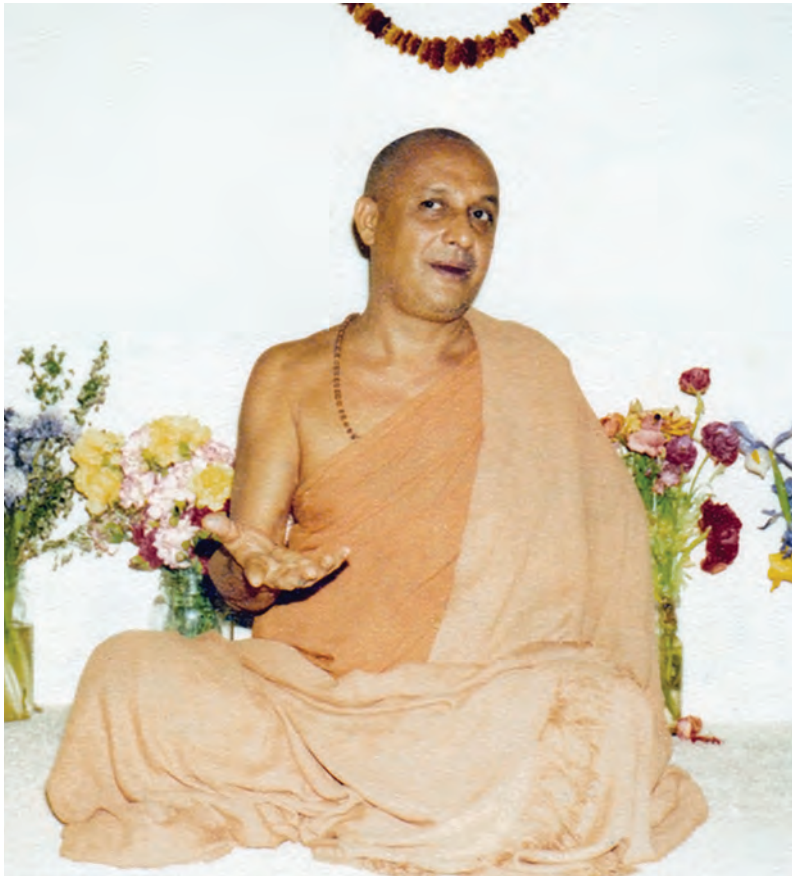

हममें से बहुत-से लोग, जिनकी योग विज्ञान तक पहुँच नहीं है, विश्रान्ति में मन का कोई स्थान नहीं मानते। तनावों के सन्दर्भ में विश्रान्ति की परिभाषा पर हम नहीं पहुँच सके हैं। यदि तनाव एक खास ढंग का है तो विश्रान्ति भी उसी ढंग की होगी। हम किसी रोग की चिकित्सा ऐसी दवा के द्वारा नहीं कर सकते जो उस रोग में प्रासंगिक नहीं है।

हम भलीभाँति जानते हैं कि तनाव तीन प्रकार के होते हैं – स्नायविक तनाव, मानसिक तनाव तथा भावनात्मक तनाव। स्नायविक तनावों का सम्बन्ध स्थूल शरीर से, नाड़ी संस्थान से, ग्रंथि तथा जीवाणु-परिवर्तन सम्बन्धी असन्तुलनों से होता है। स्नायविक तनावों को हठयोग के षट्कर्मों द्वारा दूर किया जा सकता है।

मानसिक तनाव का कारण है अत्यधिक बौद्धिक तथा दिमागी काम करना। आपकी पारिवारिक उलझनें हैं, आर्थिक कठिनाइयाँ हैं, उद्योग-धंधे हैं, अनेक प्रकार की ऐसी समस्याएँ हैं, जो आपके मन पर अधिकार जमाये रहती हैं, सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक। जब आप गहरी नींद में रहते हैं, आपका मन सपनों में सक्रिय बना रहता है, जिनमें से अधिकांश की आप को याद भी नहीं रहती। ये मानसिक तनाव सारी मानसिक संरचना को बड़ी कठिन स्थिति में डाले रहते हैं।

हमें एक ऐसे अभ्यास की जरूरत है जिससे सोचने-विचारने की क्रिया बिलकुल बन्द कर सकें, चाहे वे विचार आवश्यक हों या अनावश्यक, हमारे दैनन्दिन जीवन में प्रासंगिक हों या अप्रासंगिक। शरीर के लिए नींद आवश्यक है, और मन के लिए विश्राम। हम जानते हैं कि गहरी निद्रा में भी मन विश्रान्त नहीं होता। तब वह आवश्यक विश्रान्ति पाता कैसे है? हम एक क्षण के लिए भी मन को रोक देने की कला से अवगत नहीं हैं, हम उस प्रणाली को जानते ही नहीं हैं। मन को रोकने की प्रणाली है – ध्यान।

ध्यान एक यौगिक प्रक्रिया है जिसमें साधक अपने मन को एक बिन्दु पर केन्द्रित करने की चेष्टा करता है। मन की प्रवृत्तियाँ कुछ क्षणों के लिए लुप्त हो जाती हैं और चेतना का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। यदि आप चेतना का प्रवाह एक मिनट के लिए भी रोक सकते हैं, तो इससे आपको सारी आवश्यक ऊर्जाएँ प्राप्त हो जायेंगी और तनावों से मुक्ति मिल जायेगी।

अन्तर्मौन तथा योगनिद्रा

अब हम भावनात्मक तनावों पर आते हैं। जीवन में प्रेम तथा घृणा ही इनके कारण होते हैं। इनके मूल में रहती है अत्यधिक अपेक्षा। इसके विषय में खास कुछ कहना नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जानता ही है कि भावनात्मक तनाव क्या होता है। हममें से बहुतों को अपने जीवन में आन्तरिक भावनात्मक तनाव की स्थिति से कभी-न-कभी गुजरना पड़ता है। इससे बचने का मार्ग क्या है? योग में भावनात्मक तनावों से छूटने की दो विधियाँ हैं। एक का नाम है अन्तर्मौन और दूसरी का नाम है योगनिद्रा। अन्तर्मौन एक ऐसा अभ्यास है जिसमें आपको मन के आचरण का निरीक्षण करना पड़ता है, बिना किसा रुकावट के, तटस्थ दर्शक बने रहकर। अतीतकाल आयेगा, भविष्य आयेगा, चिन्ताएँ और परेशानियाँ आयेंगी। आपको तो केवल एक दर्शक बने रहना है।

मन में जो कुछ घटित हो रहा है, उस सब से प्रभावित हुए बिना एक निष्पक्ष द्रष्टा रहना है।

जब आपका मन किसी विचार का मन्थन करता रहता है तो अक्सर यही होता है कि या तो आप आतंकित हो जाते हैं या बहुत आनन्दित। कल्पना में मन कभी बीती बातों पर सोचने लगता है, जो या तो आनन्ददायक हो सकती हैं या अप्रिय। जब वह आनन्ददायक होती है तो हम उसे पसन्द करते हैं, हम उससे चिपके रहना चाहते हैं। वही आसक्ति है। परन्तु जब विचार बहुत अप्रिय होता है और हम पर वह बोझ मालूम पड़ता है, तब हम आतंकित हो जाते हैं। हम बहुत अशान्त और बेचैन हो उठते हैं, हम उसे नहीं चाहते हैं। उसी का नाम है विरक्ति या द्वेष।

किसी विशेष विचार के प्रति या तो हम आसक्त होते हैं या विरक्त। अन्तर्मौन के अभ्यास के क्रम में, किसी विशेष विचार के प्रति आकर्षण और विकर्षण, आसक्ति और विरक्ति से सतर्कतापूर्वक दूर रहना चाहिए। ध्यान अथवा प्रार्थना के पूर्व आपको अन्तर्मौन का अभ्यास करना चाहिए। यह देखने के लिए कि आपके मन में क्या-क्या हो रहा है, खूब गहरे उतरें और पक्का दर्शक बनने की चेष्टा रखें। यही तरीका है जिससे भावनात्मक ऊर्जा मुक्त होती है।

अन्तर्मौन के अभ्यास में पाँच चरण हैं, जो एक-दूसरे के बाद एक निश्चित क्रम में हैं। क्यों? इसलिए कि बहुत-से मामलों में हमने पाया है कि जब हम मन का निरीक्षण करने की चेष्टा करते हैं, तब सब कुछ शान्त रहता है, पूर्ण शून्यता रहती है, परन्तु ज्योंहि आप निरीक्षण बंद करते हैं, फिर कोलाहल मच जाता है।

चेतना के इस प्रकार के अवरोध को सुधारा जाना चाहिए। अतएव मन की प्रवृत्तियों के निरीक्षण की चेष्टा के पूर्व एक प्रारंभिक अभ्यास अनिवार्य है। वह बहुत सरल है। जितनी भी ध्वनियाँ आप को सुनायी पड़ सकें, आप उन सब को केवल ध्यान से सुनें। आप के चारों ओर जो भी भिन्न-भिन्न शब्द गूँज रहे हों, उन सब को आप यथासाध्य ध्यान से सुनें। यही है अन्तर्मौन का प्रथम चरण और इसके आगे चार चरण और हैं।

भावात्मक तनाव से विश्रान्ति के लिए दूसरी विशिष्ट विधि है योगनिद्रा। योगनिद्रा के अभ्यास में आप नींद में नहीं होते, किन्तु विश्रान्ति के द्वारा आप एक सक्रिय चेतना को विकसित कर लेते हैं। यह विश्रान्ति शरीर के प्रत्येक

अवयव तक पहुँचती है, दाहिने हाथ के अँगूठे से शुरू होकर केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र के संपूर्ण क्षेत्र को राहत देती है।

योगनिद्रा के द्वारा हमने अद्भुत परिणाम प्राप्त किये हैं। अगर कोई इस विशिष्ट विधि का अभ्यास प्रतिदिन एक बार आधा घंटा ही कर लेता है तो उसे न केवल शान्ति प्राप्त होगी, उसमें एक कर्मशील व्यक्तित्व भी विकसित हो जायेगा। योगनिद्रा में जो निर्णय हम लेते हैं, जो संकल्प हम करते हैं, जो विचार हम लाते हैं, वे अत्यन्त शक्तिशाली बन जाते हैं। वे अवचेतन तथा अचेतन की भी गहराई तक चले जाते हैं, और कालान्तर में वे वास्तविक रूप ग्रहण कर लेते हैं।

जीवन में सम्पूर्णता

विश्रान्ति का मतलब मन की अनुपस्थिति नहीं है, न उसकी निष्क्रियता है। योग में विश्रान्ति एक क्रियाशील स्थिति है, जिसमें मन भीतरी स्तर पर विकसित होता रहता है। हमारे दैनन्दिन जीवन में विश्रान्ति की कतिपय विधियाँ हैं हठयोग, राजयोग तथा योगनिद्रा। कोई आस्तिक रहे या नास्तिक, इससे कोई मतलब नहीं, पर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम सब के पास मन है और यह मन विकसित होता रहता है। यह कोई निश्चल ईकाई नहीं है।

पशु-लोक में चेतना बहुत धीमी चाल से विकसित हो रही है, क्योंकि वहाँ सजगता एवं विकास की चेष्टा नहीं है, परन्तु मानव में चेतना द्रुत गति से विकसित हो रही है। योगाभ्यास से यह गति बढ़ायी जा सकती है और विकास की अवधि कम की जा सकती है, खास करके ध्यानयोग के अभ्यास के द्वारा। ध्यानयोग एकाग्र चिन्तन का योग है। ध्यान से बढ़कर अनमोल और कोई चीज नहीं। जीवन में कोई भी चीज नाकाम साबित हो सकती है, परन्तु ध्यान नहीं।

वह व्यक्ति जो कम-से-कम दस मिनट प्रतिदिन अपनी चेतना की शान्ति में लगा सकता है, वह जो अपनी चेतना में प्रवेश की विशेष विधि जानता है, बाह्य जीवन के सारे नाम और रूप मिट जाने पर भी जो सजगता कायम रख सकता है, ऐसा ही व्यक्ति जीवन में सम्पूर्णता के निकट पहुँचता माना जाता है। जीवन में सम्पूर्णता का मतलब है स्वयं का उत्थान। यदि आप सम्पूर्ण नहीं है तो आप सुखी नहीं हैं, सन्तुष्ट नहीं हैं। सम्पूर्णता ही हमारा लक्ष्य है। सम्पूर्णता ही हमारा शिक्षा मन्दिर है। कुछ समय ध्यान में लगाकर प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं को सम्पूर्ण बनाने की चेष्टा करनी है।

कुंजी तो भीतर है

जब आपकी आँखें खुली रहती हैं तब आप इन्द्रिय लोक में विराजते हैं, जो अनुभवाश्रित तथा क्षणिक होता है। आप उस लोक में जीते हैं जिसका ज्ञान मन के द्वारा होता है और मन के द्वारा जो ज्ञान होता है वह अनुभवाश्रित होता है, अल्पकालीन होता है। परन्तु ज्योंहि आप आँखें बन्द करते और भीतर की ओर झाँकते हैं, भीतरी क्षेत्र दृष्टिगत हो जाता है। जब ऐसा होता है, आप अपनी चेतना में उतर जाते हैं।

साधु-सन्तों ने बार-बार कहा है कि वास्तविक जीवन तो भीतर में है। इसका क्या मतलब है? आखिर यह जीवन क्या है? यह अस्तित्व क्या है? क्या यह यहाँ मोजूद नहीं है? हाँ, मौजूद तो अवश्य है, किन्तु यह अन्तिम नहीं है। यह तो आपके भीतरी जीवन की छाया मात्र है। एक आईने में आप जिसे देखते हैं, वह तो आप के मुखमण्डल का प्रतिबिम्ब ही है। इसी प्रकार यह बाहरी जीवन आप के भीतरी जीवन का प्रतिबिम्ब है।

यदि आप दाढ़ी बना रहे हैं, तो आईने के प्रतिबिम्ब पर वह क्रिया नहीं करेंगे। आपको निश्चय ही अपने मुखड़े पर क्रिया करनी पड़ेगी। यदि आप को वस्त्र धारण करना रहता है, अपने बालों में कंघी करनी रहती है, तो वह क्रिया आप प्रतिबिम्ब पर नहीं करते। आप अपने शरीर पर वस्त्र धारण करते और सिर के बालों में कंघी करते हैं। उसी तरह यह बाह्य जीवन, जिसका अनुभव हमें दिन-रात होता रहता है, भीतरी जीवन का एक प्रतिबिम्ब है, जिसके विषय में हमें कोई ज्ञान नहीं है। अपने जीवन के एक सूक्ष्म पक्ष से हम सर्वथा अनभिज्ञ रहते आये हैं और आईने वाले प्रतिबिम्ब को ही सजाने-सँवारने की चेष्टा में लगे रहे हैं। और इसलिए हमें कभी सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है।

अपने जीवन में सब कुछ पाकर भी हम दुःखी ही रहते हैं। घर-परिवार, गाड़ी-बंगला, रुपया-पैसा, उद्योग-धंधा, लाड़-प्यार, सब कुछ रहते हुए भी हम सुखी नहीं हैं। इसका क्या मतलब है? क्या आपने कभी इस पर सोचने की चेष्टा की है? बेशक, कुछ लोग हैं जिनके पास इतनी सारी चीजें नहीं हैं, और हम उनके दुःख को तो समझ ही सकते हैं। मेरे पास भोजन नहीं है, मैं दुःखी हूँ। मेरे पास रुपया नहीं है, मैं दुःखी हूँ। परन्तु जो कुछ हम चाहते हैं, वह सब रहने पर भी अगर हम दुःखी हैं, तो इस बात से एक मार्गदर्शक सूत्र मिलता है कि सुख की कुंजी कहीं अन्यत्र है।

ध्यान से आप अपने असली स्वरूप के सम्पर्क में आते हैं। ध्यान के बिना अपने असली रूप को जान पाना असम्भव है। बाह्य जीवन और आन्तरिक जीवन के बीच एक अन्तराल है और उस अन्तराल को पार करने के लिए कोई सवारी या साधन चाहिए। वह अन्तराल एक नदी के समान है और ध्यान उसके लिए एक पुल का काम करता है। एक बार जब आप अपनी अन्तश्चेतना से सम्पर्क कायम कर लेते हैं, अन्तरात्मा को जान लेते हैं, आन्तरिक प्रकाश को कल्पना में देख लेते हैं तो सारी चीजें सुव्यवस्थित हो जाती हैं और बाह्य जीवन एक यथार्थ सुख बन जाता है। तब आप किसी चीज से वंचित नहीं रहते, भले ही भौतिक रूप से आपके पास कुछ भी न रहे।

अन्त में यही कहना है कि विश्राम आवश्यक है, हठयोग के अभ्यास आवश्यक हैं, किन्तु जीवन में सर्वाधिक आवश्यक है ध्यान की कला। बाहरी प्रकाश बुझ जाता है, भीतरी प्रकाश प्रस्फुटित होता है, फैलता जाता है और उस प्रकाश में भीतर की सारी चीजों का हम अवलोकन करते रहते हैं। ध्यान के अभ्यास में एक विशेष विधि, एक प्रक्रिया आवश्यक है। केवल आँखें बन्द कर लेने से किसी का ध्यान सम्पन्न नहीं हो जाता। मंत्र की सजगता के साथ कुछ लोग भीतर प्रवेश कर सकते हैं। दूसरी ओर, कुछ लोग शरीर में अवस्थित विशेष आध्यात्मिक केन्द्रों पर एकाग्रता के द्वारा वैसा कर सकते हैं तथा कुछ लोग प्राणायाम के द्वारा। विशेष विधियाँ गिनी-चुनी ही नहीं, अनेकानेक हैं और आप उस विधि को चुन सकते हैं जो आपको सर्वाधिक अनुकूल लगे।

– 14 अक्टूबर 1978, वॉगा वॉगा, ऑस्ट्रेलिया

जैसी प्रभु की इच्छा

ईश्वर-इच्छा एक शाश्वत सत्य है। भगवान की मर्जी ही सबसे बड़ी शक्ति है, जो सारी दृश्य-अदृश्य क्रियाओं का संचालन करती है। जब मनुष्य माया से मोहित होता है, वह इस दैव-इच्छा से बहुत दूर भटक जाता है और भयभीत तथा चिन्तित हो जाता है। लेकिन एक बार जब वह मन की सीमाओं को पार कर जाता है, तब वह उस दैव-इच्छा को महसूस करने लगता है, जो सारी सृष्टि का प्रारब्ध है। तब वह जानने लगता है कि किसी कार्य को कैसे किया जाय, कोई समस्या कैसे हल की जाय।

जब तक हममें व्यक्तिगत वासनाएँ रहती हैं, आध्यात्मिक जीवन भी एक महत्त्वाकांक्षा ही बना रहता है। एक नहीं, अनेक समस्याएँ होती हैं। इन समस्याओं को सुलझाने के लिए हम योगाभ्यास या अन्य उपाय भले ही करें, किन्तु एक मौलिक जीवन-दर्शन अवश्य रहना चाहिए – 'जैसी प्रभु की इच्छा।' जब यह जीवन-दर्शन सम्पूर्ण अन्तरात्मा से निकलता है तब जीवन में चाहे जिस परिस्थिति का सामना करना पड़े, वह मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप में नहीं रहती, बल्कि आनन्दमयी बन जाती है।

सचमुच, जीवन में वास्तविक समस्याएँ नहीं होतीं। हम केवल समझते हैं कि हमारी समस्याएँ हैं, क्योंकि हम जीवन को ईश्वर-इच्छा के संदर्भ में नहीं देखते। मनुष्य अपने जीवन से असंतुष्ट है, क्योंकि उसने अपने सार्वभौमिक स्वरूप को समझने की चेष्टा नहीं की है। वह प्रत्येक चीज को सीमित दृष्टिकोण से ही देखता-समझता है। यही कारण है कि न केवल सामान्य लोगों के जीवन में, बल्कि आध्यात्मिक जीवन के सच्चे साधकों के जीवन में भी समस्याएँ ही समस्याएँ हैं।

आधुनिक जीवन

आजकल जीवन बहुत तेजी से बदल रहा है। हमारे पूर्वजों को अत्यधिक श्रम करना पड़ता था। उन्हें पानी लाना और बोझा ढोना पड़ता था, या तो अपने ही कंधों पर या गधे-खच्चरों पर। व्यापार-धंधे के लिए उन्हें मीलों चलना पड़ता था। सुबह से शाम तक वे अपनी बाहरी समस्याओं में इस तरह उलझे रहते थे कि उनको अपनी उन भीतरी समस्याओं, उलझनों तथा उथल-पुथल

के विषय में, जो मन में लगातार बनी रहती हैं, सोचने-विचारने का समय ही नहीं मिलता था।

लेकिन गत शताब्दी में प्रौद्योगिकी इतनी बढ़ गयी है कि अब संसार के किसी भी स्थान की यात्रा कुछ ही घण्टों में पूरी कर सकते हैं। टेलीफोन घुमाइये और कहीं के भी व्यक्ति से बात कर लीजिये। पानी के लिए दूर जाना नहीं है, नल खोलिए, बस। स्विच दबाया नहीं कि चारों ओर प्रकाश। सारे काम कर देने वाले कम्प्यूटर हो गये हैं। बच्चों को शायद स्कूल जाने की जरूरत ही नहीं रह जाय। टेलीविजन चालू करो और इतिहास, भूगोल, रसायनशास्त्र, गणित आदि की पढ़ाई उसी से सुसम्पन्न हो जाय। माइक्रोवेव तरंगों के सहारे आप एक-डेढ़ मिनट में ही अपना खाना पका सकेंगे। यदि भोजन तैयार करने में एक-डेढ़ मिनट ही लगने वाला है, तो आप बाकी समय कैसे बितायेंगे?

इतिहास में पहली बार ऐसा हो रहा है कि आदमी इतना स्वतंत्र है कि उसके मन के आगे समस्याएँ ही नहीं रह गयी हैं। हाल में ही स्कैन्डिनेविया में मेरा बहुत-से नवयुवकों से पाला पड़ा। पहले तो मैं यही तय नहीं कर पाया कि उनमें इतना गहरा असन्तोष आखिर है किस प्रकार का। मैंने उनसे पूछा कि क्या उनकी समस्या शिक्षा-सम्बन्धी है, शादी-ब्याह सम्बन्धी है, नौकरी सम्बन्धी है, या घृत-लवण-तैल-तण्डुल-वस्त्र-इंधन सम्बन्धी है? उन सब ने उत्तर दिया, 'नहीं, ऐसी कोई समस्या हमारे सामने नहीं है।' तब मैंने उन लोगों को बताया, 'हाँ, यही तो आप लोगों की समस्या है।' मनुष्य को जब स्थूल जगत् की कोई समस्या नहीं रहती, तब उसको अपने मन को सँभालना पड़ता है, और वही सबसे बड़ी समस्या है।

सन्तुलन की खोज

पाँच हजार से अधिक वर्ष पूर्व, जब भारतीय सभ्यता अपनी पराकाष्ठा पर थी, लोगों के सामने मन तथा आत्मा की, स्नायविक असन्तुलन तथा अन्तर्विरोध की ही समस्याएँ थीं। उस काल में वे इसका रास्ता ढूँढने लगे। इस प्रकार मनुष्य की मानसिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक ऊर्जाओं को सही दिशा देने के निमित्त योग-विज्ञान का पुनरुद्धार हुआ।

आज जब आधुनिक जीवन मानव को प्रकृति से काफी दूर ले जा रहा है, उसे योग को अधिकाधिक अपनाना पड़ेगा, ताकि खोये हुए संतुलन की क्षतिपूर्ति हो सके। इसीलिए आज के दौर में हम योग की ओर एक सामूहिक

वापसी की प्रवृत्ति देख रहे हैं। अब हम देखते हैं कि सभी जगह लोग अपना समय अधिक-से-अधिक रचनात्मक ढंग से बिताने का मार्ग ढूँढ रहे हैं। कल तक योग एक अनजान विद्या के रूप में ही था, किन्तु आज बहुत-से लोग इसके अभ्यास में लग गये हैं और उनकी संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है। केवल यूरोप के देशों में ही 70,000 से अधिक पंजीकृत योग-शिक्षक हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में योग का प्रवेश शुरू हो रहा है।

जब हम योग शब्द का प्रयोग करते हैं तब उसका मतलब आसन और प्राणायाम ही नहीं होता। योग तो मानव के शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विज्ञान है। योग के अनेक आयाम हैं, जैसे, जीवन में सक्रिय अभिव्यक्ति का योग – कर्म योग, भावनाओं को सही दिशा में मोड़ने का योग – भक्तियोग, मनुष्य के भीतर सृजनात्मक ऊर्जा की जागृति का योग – कुण्डलिनी योग, आदि। योग का असली मतलब इन सब से है, और इसीलिए हमें योग के इन सभी आयामों को जीवन में स्थान देना चाहिए।

मानव में एक गुप्त ऊर्जा, एक प्रबल शक्ति होती है जो प्रसुप्त अवस्था में रहती है, किन्तु योगाभ्यास से उसे जागृत किया जा सकता है। अतीत काल में थोड़े-से ही संत, साधु तथा रहस्यवादी होते थे जिनकी यह शक्ति जागृत रहती थी। जो हो, अब समय आ गया है कि मनुष्य अपने निम्न मानसिक स्तर से ऊपर उठे और उच्चतर आध्यात्मिक स्तर पर जीवन बिताने की चेष्टा करे। मानव के विकास में कुण्डलिनी का जागरण एक बहुत महत्त्वपूर्ण क्रिया है और वह शुरू हो भी चुकी है। कुछ दशकों में ही विकसित आध्यात्मिक चेतना वाले बहुत-से लोग हमें मिलने लगेंगे।

ईश्वर तथा गुरु

जब हम आध्यात्मिक चेतना की बात करते हैं, हमें दो महत्त्वपूर्ण पहलुओं को अवश्य याद रखना चाहिए – ईश्वर और गुरु। हमारे भीतर ईश्वर का ज्ञान अभी तक जाग्रत नहीं है, भले ही ईश्वर के बारे में हम लम्बे-चौड़े तर्क-वितर्क क्यों न करें। हमारा ज्ञान केवल अपने माता-पिता या शिक्षकों से सुनी बातों पर आधारित है। ईश्वर में सच्चा विश्वास जगाने के लिए, अनुभवातीत सत्ता की वास्तविक सजगता पाने के लिए एक सुलगाने वाली शक्ति होनी चाहिए। जैसे आप बम का विस्फोट करते हैं, ठीक उसी प्रकार आन्तरिक जगत् में जागृति होनी चाहिए। उस जागरण के निमित्त आपको एक गुरु की आवश्यकता होती है।

गुरु ही उत्प्रेरणा का स्रोत है, विस्फोटक है, क्योंकि आप उसे देख सकते हैं, समझ सकते हैं। जब कुण्डलिनी जागृत होती है, तब सीमित मन का विस्फोट होता है। इस निम्न सत्ता के नाश के साथ अनुभव का एक असीमित साधन उपलब्ध होता है, जिसके द्वारा आप ईश्वर की वास्तविकता का दर्शन कर सकते हैं। इस प्रकार अध्यात्म के मार्ग में गुरु ही पहली सीढ़ी है। ईश्वर आप के लक्ष्य हो सकते हैं, परन्तु आप को एक गुरु का वरण करके तथा सच्ची शिष्यता धारण करके ही श्रीगणेश करना है।

शिष्य बनना गुरु बनने से अधिक महत्त्वपूर्ण है। सच्चा शिष्य वही होता है जो अपने जीवनकाल में विस्तृत चेतना विकसित कर लेता है। उसके लिए गुरु सदैव निकट ही रहते हैं। सच्चे शिष्य की मनोवृत्ति कभी बदलती नहीं। शिष्य सदैव शिष्य ही बना रहता है, उसके लिए पदोन्नति नहीं होती। सच्चा शिष्य कभी अपमानित अनुभव नहीं करता। जो गुरु के द्वारा अपमानित होने

की बात करते हैं, वास्तव में स्वयं को धोखा देते हैं। वे कभी एक सच्चे शिष्य की मनोवृत्ति धारण नहीं कर सकते। अतएव गुरुओं को अपमानित करने में कभी मत लगिये। अपनी छवि में ही आप को गुरु मिलेंगे, उससे अधिक और कुछ नहीं।

सबसे महान् गुरु की खोज में दर-दर भटककर अपना समय नष्ट मत करें। अपना आध्यात्मिक अभ्यास जारी रखें, और पूर्ण विश्वास तथा विनम्रता के साथ आगे बढ़ते जायें। समय-समय पर आश्रम आयें, और यथासंभव शान्ति और आनन्द के साथ रहने की चेष्टा करें। जीवन में शून्यता की चिन्ता मत करें। ईश्वर की इच्छा में जीयें। मैं किताबी बातें नहीं, अपने निजी अनुभव से ऐसा कह रहा हूँ। ईश्वर सर्वोपरि हैं। अन्ततोगत्वा उन्हीं की इच्छा साकार होगी। आप कुछ नहीं कर सकते, आप तो निमित्त मात्र हैं।

पूर्ण समर्पण

शुरू-शुरू में आश्रम-निर्माण, योग-शिक्षा, विश्व-भ्रमण, योग केन्द्रों की स्थापना या शिष्य बनाने का मेरा कोई विचार नहीं था। मैं ऐसा व्यक्ति था जो सालों एकान्त में जीवन बिताना चाहता था। मुझे शान्त वातावरण में रहना ज्यादा पसन्द है। वही मेरा उद्देश्य था, क्योंकि मैं सोचना-विचारना नहीं चाहता था। बिल्कुल विचार नहीं करना, यह मेरी व्यक्तिगत अभिलाषा थी, परन्तु दैव-इच्छा कुछ दूसरी थी।

मैं कभी आश्रम नहीं बनाना चाहता था, पर मुझे आश्रमों का निर्माण करना पड़ा। मैं लोगों और रुपये-पैसों से कोई सरोकार नहीं रखना चाहता था, किन्तु मुझे रखना पड़ा। मुझे यह विश्वास नहीं था कि मनुष्य किसी अभ्यास से विकसित भी हो सकता है। मैं इस पर कभी विश्वास नहीं करता था कि मनुष्य को अपने आध्यात्मिक विकास के लिए कुछ करना-धरना भी है। मैं सोचता था, आखिर किसलिए? भगवान ने जब मुझे जन्म दिया है तो मेरी देख-रेख करना उसी का कर्त्तव्य है। यदि मैं अभागा हूँ या अपराधी हूँ या सन्त हूँ, तो क्या? उसी ने मुझे ऐसा बनाया है, मैं स्वयं तो ऐसा नहीं बना हूँ। अब वही इसका समाधान करे।

सम्पूर्ण समर्पण का यही भाव है। मनुष्य को कुछ करना नहीं है, केवल स्वयं को ईश्वर की मर्जी पर छोड़ देना है। परन्तु आप जानते ही हैं कि जब हानि पहुँचती है, असफलताएँ हाथ लगती हैं तब उसकी मर्जी पर रह पाना कितना

कठिन होता है! जब जीवन पूर्णरूपेण समर्पित हो जाता है, जब प्रत्येक चीज पूर्णतया परम-सत्ता की मर्जी पर छोड़ दी जाती है तब आपको किसी भी परिस्थिति में शान्तिपूर्वक, अमन-चैन से रहने के लिए तैयार रहना है।

यदि आपका पति आपको त्याग देता है या आपकी पत्नी आपको छोड़ देती है, तो उसे भी आप दैवी इच्छा माने। जब परिस्थिति आपके बिल्कुल प्रतिकूल हो, उसे भी भगवान का उपहार मान लें। धन-सम्पत्ति और सुख-सुविधा ही नहीं, बल्कि कठिनाइयों और मुश्किलों को भी उपहार ही समझना चाहिए, उनकी इच्छा का प्रकट स्वरूप। यही वह मौलिक विश्वास है जिसका हमारे आध्यात्मिक जीवन में अभाव पाया जाता है। आज जो बहुत-सी बातें हम ईश्वर के सम्बन्ध में कहते हैं वे केवल बौद्धिक कसरतें होती हैं, उनका मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हम कहते हैं, 'हे प्रभु, आप ही मेरे सब कुछ हैं। आपकी इच्छा तो पूरी होगी ही, किन्तु मुझे मेरा पति भी लौटा दीजिये।' जीवन का यह कैसा व्यवसाय है? एक ओर तो उन्हें सर्वस्व समर्पित करने की चेष्टा, लेकिन साथ ही अपने लिए एक तिनका बचा रखना और फिर उसी तिनके के चलते कष्ट भोगते रहना!

भक्ति ईश्वर के प्रति, दैवी इच्छा के प्रति सम्पूर्ण समर्पण है। आप उस सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् सत्ता के एक क्षुद्र अंश मात्र हैं। आप कुछ नहीं हैं, आप परमाणु से भी छोटे हैं। उस अकथ्य सार्वलौकिक यन्त्र के आप केवल एक छोटे-से पुर्जे की तरह हैं। देश और काल के अनन्त आयाम में असंख्य घटनाचक्र चल रहे हैं। आपको इधर या उधर उछाला जाना ही है और अगर आप उसके अनुकूल नहीं बनते हैं, तो आप सदैव कष्ट ही भोगते रहेंगे।

यौगिक जीवन-दर्शन

हमें अपने जीवन का सारा दर्शन ही बदल डालना होगा। शुरू से ही हमें सुख से प्रेम तथा दुःख से घृणा करने की सीख मिलती रही है। लेकिन यौगिक जीवन-दर्शन में कहा गया है कि इन्द्रियों तथा विषयों से उत्पन्न सारे अनुभवों

का अन्त पीड़ा में होने वाला है। बुद्धिमान् लोग उन्हें वास्तविक नहीं मानते, क्योंकि उनका आदि-अन्त हुआ करता है।

सोचने-विचारने के पूरे तौर-तरीके, जीवन के सम्पूर्ण दर्शन में नवीनता लाना आसान नहीं। संन्यासियों को हम यही सिखाने की चेष्टा कर रहे हैं, परन्तु यह चेष्टा सदा सफल नहीं होती। आप अनेक बार लड़खड़ायेंगे और गिरेंगे, लेकिन अगर आप फिर उठकर चल सकने में सक्षम हों तो यह कोई बड़ी बात नहीं। जीवन में न्यूनतम आवश्यकताएँ रखना और सरल चिन्तन अपनाना, यही योग का जीवन-दर्शन है। शेष समय आप अपनी चेतना को विकसित करने की चेष्टा में लगे रहें। प्रकाश मिलेगा ही।

गीता के ग्यारहवें अध्याय में अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछता है, 'प्रभु, मुझे अपना विराट् रूप दिखाइये, जिससे मैं आप के ईश्वरत्व को जान-समझ सकूँ।' इस विनती पर श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं, 'मेरे दिव्य स्वरूप का दर्शन इन चक्षुओं से सम्भव नहीं, क्योंकि ये सीमित हैं।' किन्तु अर्जुन तब तक आग्रही बना ही रहता है जब तक भगवान कृष्ण मान नहीं जाते। परन्तु ज्यों ही वह रूप प्रकट होता है, अर्जुन के मन में एक विस्फोट होता है और वह आतंक से भरकर चिल्ला उठता है –

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास॥

'प्रभु, इस रूप को हटा लीजिये, यह बहुत भयंकर है, मैं आपको पूर्व-परिचित मानव-रूप में ही देखना चाहता हूँ, जो मेरी समझ में आ सकता है।'

इस प्रसंग से आध्यात्मिक जीवन में तैयारी की आवश्यकता पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है। दिव्य अनुभव की जागृति का तब तक कोई मतलब नहीं जब तक आप उसे सँभालने के लिए तैयार न हों। इसीलिए सबसे पहले आते हैं गुरु, उसके बाद ही आता है चेतना के ढाँचे का सम्पूर्ण रूपान्तरण। तब आप उस अवस्था तक पहुँचते हैं, जहाँ आपको दिव्य सत्ता के विधान का अनुभव होने लगता है। उसके बाद जीवन सहज ढंग से चलने लगता है। हर्ष या विषाद फिर रह नहीं जाता। बाह्य जीवन ज्यों-का-त्यों रहता है, लेकिन आन्तरिक जीवन पूर्णतया बदल जाता है।

– 10 नवम्बर 1980, मैन्ग्रोव माउन्टेन, ऑस्ट्रेलिया

आंतरिक अनुभूति का जागरण

इस शरीर, मन और बुद्धि के परे हम सबमें एक ऐसा आन्तरिक अस्तित्व है, एक ऐसी शक्ति है, एक ऐसा प्रकाश है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। साधारणतया हम उसका अनुभव नहीं कर पाते हैं। योग का उद्देश्य अपने उसी केन्द्र को जानना है। शरीर, मन, बुद्धि और भावना, जितना भी हम इनके बारे में जानते हैं, ये सब हमारी परिधि मात्र हैं। ये हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं हैं, और चूँकि हमारी दृष्टि उस आंतरिक अस्तित्व को देख नहीं पाती है, हम अधूरे रह जाते हैं।

अपने उस अधूरेपन में दर्द, तड़प, कुण्ठा, भय, उद्देश्यहीनता और एक प्रकार की निरर्थकता का अनुभव करते हैं। हमारी दिन-प्रतिदिन की सारी समस्याएँ, जो कि हमारी नौकरी, परिवार, व्यापार या मित्र-रिश्तेदारों से जुड़ी हुई हैं, ये सब इस अधूरेपन के कारण ही हैं। अगर आप अपने इस केन्द्र तक जाने में सफल होते हैं तो आप एक प्रकार की पूर्णता का अनुभव करेंगे। यह पूर्णता ही आनन्द है। यह पूर्णता एक असीमित और चिरस्थायी आनन्द का स्त्रोत है जिसे जीवन की किसी भी प्रकार की समस्या नष्ट नहीं कर सकती।

योग इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम साधन है। और भी अनेक रास्ते हैं, पर मैंने स्वयं के लिए और अपने जमाने के लोगों के लिए ऐसा अनुभव किया कि योग का रास्ता ही सबसे उत्तम है। योग का उद्गम तंत्र से हुआ है। तंत्र एक ऐसा विज्ञान है जो कहता है कि अपने केन्द्र तक जाने के लिए आपको अपने बाहरी दिन-प्रतिदिन के जीवन में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। आपको न तो धार्मिक बनने की आवश्यकता है, न शुद्ध होने की आवश्यकता है, और न ही साधु, ब्रह्मचारी या पुजारी बनने की आवश्यकता है।

अपनी अंतरात्मा का अनुभव हर कोई कर सकता है चाहे वह एक विषयासक्त व्यक्ति हो, नास्तिक हो, विवादप्रिय व्यक्ति हो, भोगी या भठियारा ही क्यों न हो। यह तंत्र दर्शन का आधार है। आपको अपने मन का विस्तार करना है और विस्तार योग की साधना द्वारा संभव है। ये अभ्यास हठयोग, राजयोग, भक्तियोग और कर्मयोग के अन्तर्गत आते हैं। इस अन्तरात्मा का अनुभव प्राप्त करने के लिए उपर्युक्त योग मार्ग में से कोई एक या फिर कोई दो पद्धतियाँ या फिर योग के समन्वित मार्ग का प्रयोग किया जा सकता है।

मन का विस्तार

मन का विस्तार बहुत महत्त्वपूर्ण है और हर किसी को इसे समझना चाहिए। मन के विस्तार के द्वारा आप देश और काल की परिधि से बाहर निकल सकते हैं। मन की सीमाओं के कारण ही कुछ आयामों के बाद हम और अधिक समझ नहीं पाते। बोध की प्रक्रिया, जो की मन और इन्द्रियों द्वारा होती है, उसकी भी अपनी सीमा है। अगर आपके सामने एक फूल रखा हो तो ही आप उसे देख पाएँगें अन्यथा नहीं, क्योंकि आपकी इन्द्रियाँ उन्हीं वस्तुओं का अनुभव कर पाती हैं जो कि वास्तव में हों। जब तक मन और इन्द्रियों में तादात्म्य नहीं होगा तब तक हम ध्वनि, आकृति, स्पर्श, स्वाद या गंध आदि का अनुभव नहीं कर सकेंगे। जब तक वस्तु, इन्द्रिय और मन के बीच तादात्म्य नहीं होगा, तब तक किसी प्रकार का अनुभव संभव नहीं है। इसे मन की सीमितता कहते हैं और हम मन की इन सीमाओं में बंधे हुए हैं।

वस्तु, मन और इन्द्रियों के परे जो अनुभव है, उस अनुभव को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि मन का विस्तार किया जाए। मान लीजिए, आपकी खुली आँखों के सामने कोई फूल नहीं है, फिर भी आप सुगंध का अनुभव कर रहे हैं, इसे ही मन की विस्तृत अवस्था कहते हैं। जब मन बिना

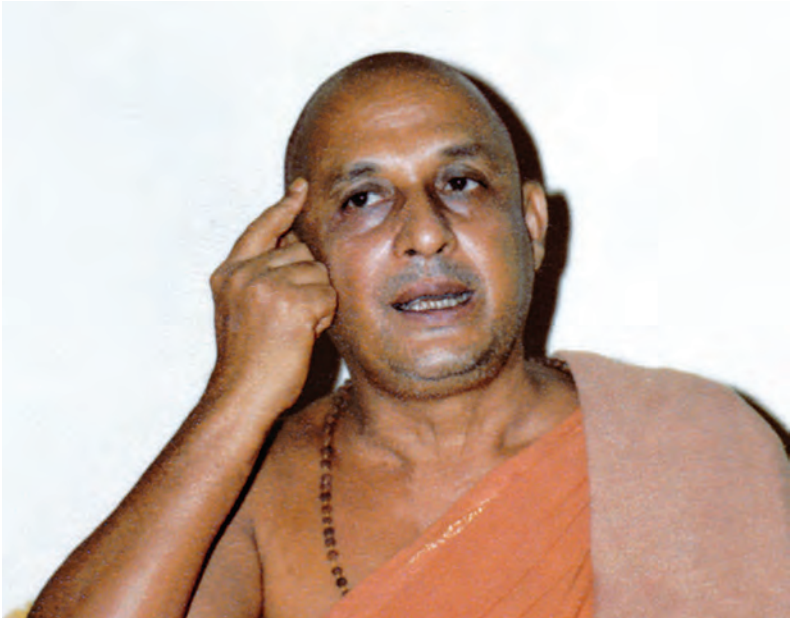

किसी इन्द्रिय के सहारे, वस्तु के न होने पर भी अनुभव प्राप्त कर ले, ऐसी अवस्था को ही मन का विस्तार होना कहते हैं।

मन के इस विस्तार के फलस्वरूप आपके अंदर एक प्रकार की ऊर्जा निकलती है, मुक्त होती है। ऐसा होना बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अगर मन का विस्तार नहीं होता है, तो आप किसी भी प्रकार के अनुभव के लिए हमेशा अपनी इन्द्रियों और वस्तुओं पर निर्भर रहेंगे और उस अवस्था में आपके अंदर उस शक्ति का, उस ऊर्जा का विमुक्त होना संभव नहीं है।

इसलिए, योग में दो प्रकार की प्रक्रियाएँ हैं। एक समूह के अभ्यास आपको मन के विस्तार की दिशा में ले जाएँगे। इन अभ्यासों के फलस्वरूप आपका मन देश, काल और वस्तु के परे जाकर कार्य करने में सक्षम हो जाएगा। आप मन के परे छलाँग लगा पाएँगे। वस्तु के न होने पर भी आप उसको देख पाएँगे; आवाज के न होने पर आप उसे सुन पाएँगे, कोई फूल न होने पर भी आप सुगंध ले पाएँगे। इसी को मन का विस्तार होना कहते हैं।

जागृति के तीन आयाम

आसन, प्राणायाम या ध्यान जैसे योग के अभ्यास आपकी चेतना का विस्तार करते हैं। और ये ऐसा कैसे कर पाते हैं? योग दर्शन के अनुसार आपकी रीढ़ की हड्डी में तीन महत्त्वपूर्ण घटक हैं – चक्र, नाड़ी और कुण्डलिनी।

मेरुदण्ड के छः विभिन्न स्थानों पर चक्र अवस्थित हैं। अगर आप इन चक्रों को जाग्रत करने में सक्षम हो जाते हैं तो आपको कुछ अनुभव प्राप्त होंगे, और ये अनुभव उच्च कोटि के अथवा विस्फोटक नहीं, बल्कि हल्के किस्म के होंगे। ये अनुभव आनंद प्रदायक होंगे, डरावने नहीं। ये आपको खुशी और आनंद देंगे और संभवतः एक प्रकार के सम्मोहन की अवस्था में ले जाएँगे। योगासनों द्वारा इन चक्रों को जाग्रत कर पाना संभव है। आसन केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है, उनका सीधा संबंध चक्रों से है।

जब आप हल्के, आनंदप्रदायक अनुभव प्राप्त करते हैं तो ये अनुभव मन के विस्तार की प्रथम श्रेणी के अनुभव हैं। यह आवश्यक नहीं कि आप एल.एस.डी., गांजा या अन्य प्रकार के मादक पदार्थों का सेवन करें। मैं इन मादक द्रव्यों की निन्दा नहीं कर रहा हूँ, पर अगर आप मन के परे छलांग लगाना चाहते हैं, अगर आप देश, काल और वस्तु की सीमा से परे जाना चाहते हैं, थोड़े से समय के लिए ही सही, तो योग आसन आपके लिए प्राथमिक अभ्यास हैं।

हालाँकि, चक्रों के जाग्रत हो जाने के बाद आपको अपने शरीर में प्रवाहित होने वाली ऊर्जा को अवश्य सम्हालना पड़ेगा। जैसा कि आप जानते हैं, मेरुदण्ड की परिधि में तीन महत्त्वपूर्ण ऊर्जाओं का प्रवाह होता है। बाईं तरफ इडा का प्रवाह है जिसका संबंध मस्तिष्क से है। दाईं तरफ प्राणिक ऊर्जा का प्रवाह है जिसे पिंगला कहते हैं। और मध्य में आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रवाह है, जिसे सुषुम्ना कहते हैं। हम लोग इन नाड़ियों को ऊर्जा की संवाहिकायें कहते हैं। मानसिक ऊर्जा दिमागी गतिविधियों के लिए जिम्मेवार है, प्राणिक ऊर्जा जीवन की गतिविधियों के लिए जिम्मेवार है, और आध्यात्मिक ऊर्जा प्रवाह आध्यात्मिक अनुभवों के लिए जिम्मेवार है।

मध्य नाड़ी सुषुम्ना को जाग्रत करने के लिए प्राणायाम के अभ्यास को सर्वोत्तम माना गया है। प्राणायाम सिर्फ श्वास का व्यायाम नहीं है, यह उससे कहीं अधिक है। जब आप प्राणायाम का अध्ययन करेंगे तो पाएँगे कि नाड़ी-शोधन, कुम्भक और बंध, जो कि अलग-अलग स्थानों जैसे गले, पेट और मूलाधार में लगाए जाते हैं, सुषुम्ना नाड़ीं में हलचल पैदा कर सकते हैं।

जब यह सुषुम्ना नाड़ी जागृत होती है तो आपको बड़े ही विलक्षण अनुभव प्राप्त होंगे। इस तरह के अनुभव ऐसा संकेत देते हैं कि आपने मन के पार छलाँग लगा ली है, आपने देश और काल की परिधि के परे अनुभव कर लिया है। सुषुम्ना का जागरण बहुत ही शक्तिशाली और प्रभावशाली होता है, उन हल्के अनुभवों की अपेक्षा। इसका प्रभाव कुण्डलिनी शक्ति, जो कि मेरुदण्ड के आधार में सुषुप्तावस्था में है, पर पड़ता है।

मन ऊर्जा है

योग का मुख्य उद्देश्य है आपके मन का विस्तार, और जब मन का विस्तार होता है तब ऊर्जा विमुक्त होती है। यह ऊर्जा का मुक्त होना क्या है? यह धार्मिक मुक्ति नहीं है। जैसे कि दही से मक्खन का निकलना उसके सार का मुक्त होना है, जैसे कि युरेनियम से परमाणु ऊर्जा को विमुक्त करना है, ऐसे ही मन से भी ऊर्जा विमुक्त होती है।

मन एक पदार्थ है, विचार भी पदार्थ है, अनुभव एक पदार्थ है, कम्पन एक पदार्थ है। हो सकता है आप इन्हें इस रूप में न देखते हों। इस पदार्थ में विस्फोट संभव है। एक वैज्ञानिक विघटन, विखण्डन और विलयन की प्रक्रिया द्वारा ऊर्जा का विस्फोट करता है। उसी प्रकार योगी हर विचार को पदार्थ और हर

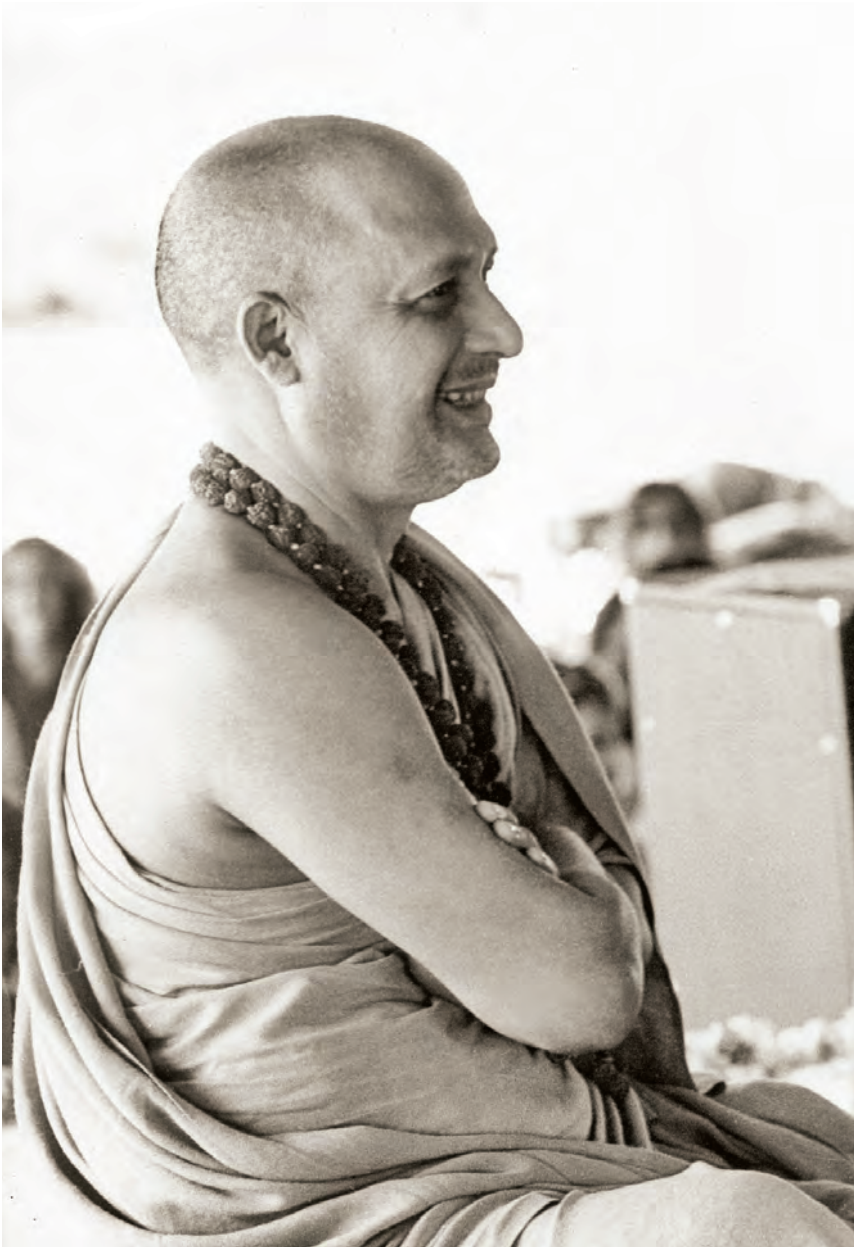

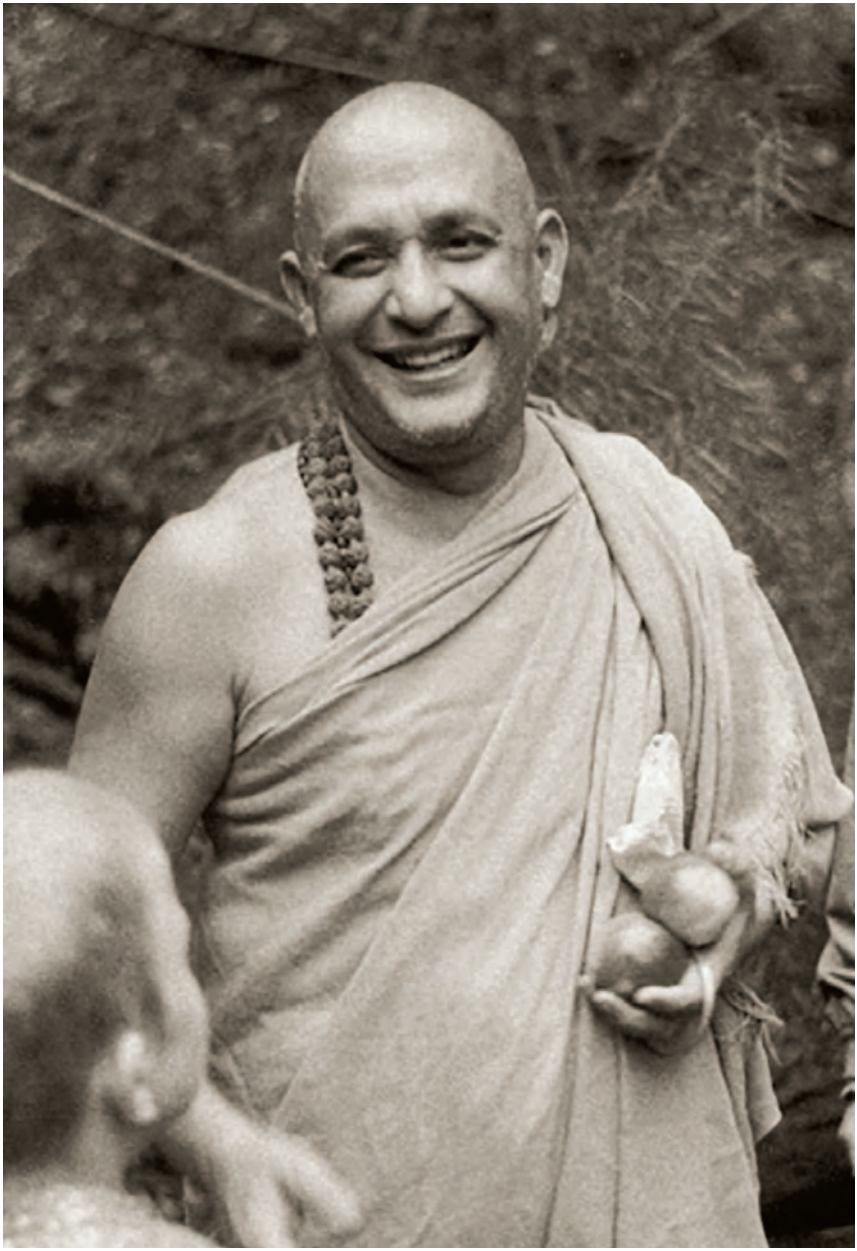

विचार के आधार को ऊर्जा समझता है। आसक्ति, वासना, प्रेम और घृणा का आधार भी ऊर्जा ही है।

क्या है प्रेम, घृणा, करुणा, भय और स्मृति? ये मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ नहीं हैं। ये सारगर्भित और संभावनायुक्त तरंगें हैं। कल्पना कुछ भी नहीं, ऐसा नहीं है। कल्पना का भी ठोस आधार है। कल्पना एक प्रकार की तरंग है। भय, क्रोध, ईर्ष्या, लालच, वासना और अन्य बहुत-सी चीजें तरंगें ही हैं जो मुझ में, आप में, हम सब में प्रवाहित हो रही हैं। उनकी अपनी आवृत्ति और वेग भी होता है।

आपने मनोविज्ञान की किताबों में जो कुछ पढ़ा था उसे भूल जाइए। मैं मनोविज्ञान का खण्डन या आलोचना नहीं कर रहा हूँ। मैं तो बस उसकी सीमितता की ओर इशारा कर रहा हूँ। आप यह कैसे कह सकते हैं कि विचार एक मनोवैज्ञानिक वस्तु है? विचार एक स्पंदन है, जो शारीरिक क्रियाविज्ञान से सम्बन्धित है। उसमें वजन, रंग, वेग और आवृत्ति भी है। हर विचार, हर ध्वनि और हर गति का एक आकार होता है।

मैं संसार की लाखों जगहों पर विद्यमान हूँ। आप भी लाखों जगहों पर हैं। आप केवल इतने ही नहीं हैं। आप मन के बारे में कुछ नहीं जानते। मन तो हिम-खण्ड के समान है, जिसका बहुत छोटा हिस्सा ही आँखों को दिखलाई देता है और शेष अदृश्य रहता है। आज बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिकों ने जो मन की परिभाषा दी है वह हजारों साल पहले योगियों और ऋषियों द्वारा दी गई परिभाषा की तुलना में कुछ भी नहीं है। वैज्ञानिक मन के बारे में कुछ भी नहीं जानते। ऊर्जा के इस केन्द्र में विस्फोट करना ही होगा।

मन का विखण्डन

पदार्थ ऊर्जा का स्थूल रूप है और ऊर्जा पदार्थ का सूक्ष्म रूप है। पदार्थ और ऊर्जा एक ही हैं। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में वे अलग-अलग दिखलाई पड़ते हैं। अतएव, विचार पदार्थ हैं। हर विचार एक बुलबुले के समान है, जो नीचे से ऊपर को आता है। विचार कहाँ से आते हैं? वे बाहर से तो नहीं आते। वे एक विशेष प्रकार की ऊर्जा की अभिव्यक्ति हैं।

ऊर्जा की एक प्रमात्रा होती है। कभी वह 'वामपंथी' होती है तो कभी 'दक्षिण पंथी'। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूँ, ये शब्द तंत्र में काफी पहले से प्रयोग होते आए हैं। वाम मार्ग, वाम पंथी है ओर दक्षिण मार्ग, दक्षिण पंथी। मध्य मार्ग

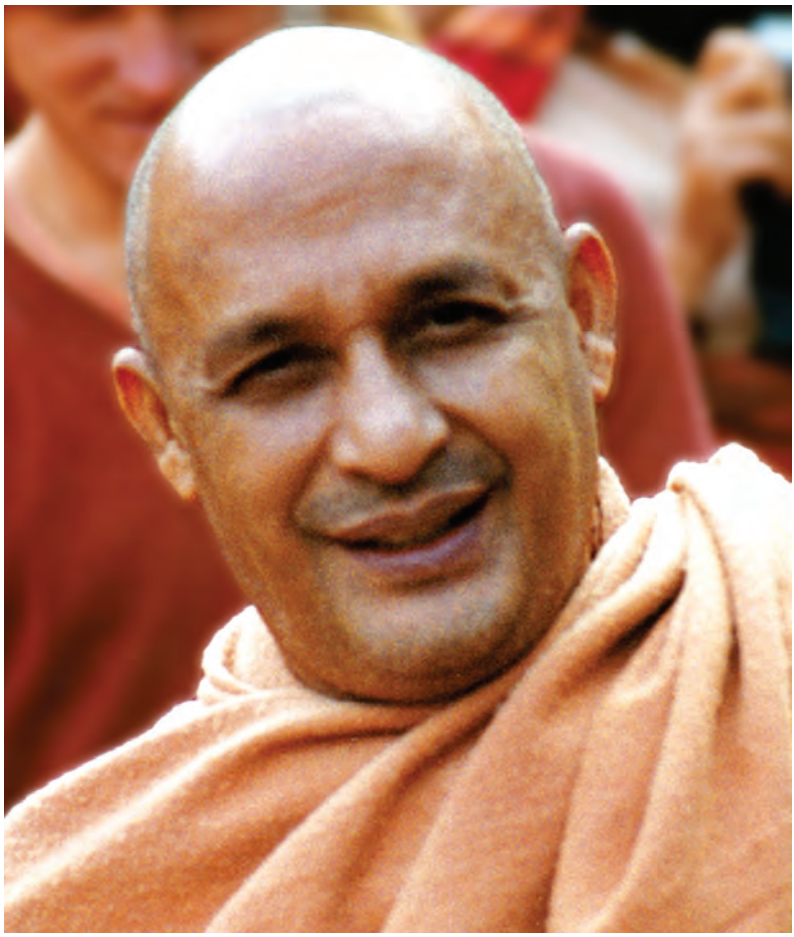

बीच का रास्ता है। तो यह जो ऊर्जा है वह कभी बाईं तरफ प्रवाहित होती है, तो कभी दाहिनी तरफ प्रवाहित होती है और कभी बीच के रास्ते में प्रवाहित होती है। पर इसे नियंत्रित करना होगा। इस विचार को, इस बुलबुले को, विश्लेषित करना होगा, विच्छेदित करना होगा। इसको विलग करना ही होगा।

पदार्थ समरूप नहीं होता है। वह चीज जिसके घटक नहीं होते वह समरूप होती है, और जिसके घटक होते हैं वह समरूप नहीं होती। कोई भी पदार्थ समरूप नहीं है। केवल एक वस्तु समरूप है और वह है आत्मा, चेतना, पुरुष। वही समरूप है, क्योंकि वह किन्हीं दो पदार्थों से निर्मित नहीं है। वह एक है, केवल एक। पर हर पदार्थ, यहाँ तक कि विचार भी एक संयोजन है। क्रोध

संयोजन है, प्रेम संयोजन है, स्मृति संयोजन है, और ध्यान में हुए अनुभव भी संयोजन हैं।

विचार किन घटकों से बना है? जैसे यह शरीर अस्थि-मज्जा, रक्त-कोष और ऊतकों से बना है, उसी प्रकार एक विचार छब्बीस तत्त्वों से बना हुआ है। सांख्य दर्शन के अनुसार, मन एक पदार्थ है और विचार शृंखला भी। पदार्थ छब्बीस प्रकार के तत्त्वों से बना होता है। मन को ठीक उसी प्रकार विखण्डित करना पड़ेगा जैसे यूरेनियम को विखण्डित करते हैं, नाभिक को तोड़ते हैं, ऊर्जा को विखण्डित करते हैं।

मैं विखण्डित करना या तोड़ना शब्द का प्रयोग वैज्ञानिक अर्थ में कर रहा हूँ। ऐसा मत करना कि कल सुबह-सुबह हथौड़ा लेकर अपने सिर को छब्बीस टुकड़ों में तोड़ डालो! जिन्होंने भौतिक विज्ञान पढ़ा है, वे समझ सकते हैं कि जब मैं यह कहता हूँ कि विचार को छब्बीस टुकड़ों में विभाजित किया जा सकता है तो मेरा तात्पर्य क्या है। अब आप विचार को कैसे विभाजित कर सकते हैं? आप विचार को एकाग्रता के अभ्यास से विभाजित कर सकते हैं। आप विचार के विभिन्न घटकों को विभिन्न अवस्थाओं, जैसे विक्षेप, व्यग्रता, अस्थिरता और भ्रम में देख सकते हैं।

आप एकाग्रता प्राप्त करने की इन सब अवस्थाओं को पसंद नहीं करते हैं, जिनसे होकर आपको गुजरना है। गुरु आपको मंत्र देते हैं और आप एक सप्ताह-दस दिन में ही धारणा और समाधि प्राप्त कर लेना चाहते हैं। आप सोचते हैं कि मन को भूल जाना, अपने आपको, हर चीज को भूल जाना ही समाधि है। हाँ, समाधि है तो यही, पर अभी इसकी चर्चा मत कीजिए। सबसे पहले आपको अपने मन को विभाजित करना होगा, और मन तथा विचार को विभाजित तभी किया जा सकता है जब आप उसे पूरी तरह से आवरण मुक्त कर दें।

आप अपने मंत्र 'ॐ नमः शिवाय' का जप कर रहे हैं, और अचानक आप पाते हैं कि आपका मन कहीं और भटक गया है। आप उसे वापस मंत्र पर लाते हैं और वह दुबारा फिर भटक जाता है। वह मंत्र विचार के सभी घटकों को बाहर खींच कर लाता है। इसी प्रकार विचार को एक पदार्थ की तरह विभाजित किया जा सकता है। विचार को विभाजित करने पर आप ऊर्जा को खोज पाएँगे। वह ऊर्जा क्या है? वह एक अनुभव है, एक अनुभूति है। जब आपको आंतरिक अनुभूति होती है, जिसको आप

अतीन्द्रिय अनुभूति भी कहते हैं, यही अनुभूति पदार्थ का मूल आधार है, पदार्थ का नाभिक है।

इसलिए आपके क्रोध, वासना, भय, ईर्ष्या और आसक्ति के पीछे, आपकी सभी प्रकार की मानसिक और मनोवैज्ञानिक स्वभाव-विशेषता के पीछे एक ऊर्जा है, और आपको उस ऊर्जा को हर विचार से अलग करना होगा। आप में से जो लोग ध्यान और धारणा का अभ्यास कर रहे हैं, उन्हें यह अच्छी तरह याद रखना चाहिए की विचारों का नियंत्रण आवश्यक नहीं है। मन का नियंत्रण आवश्यक नहीं है। विचारों को बाहर आने दीजिए।

जो अभ्यास आप अपने लिए चुनते हैं वह आपको अपने विचारों को प्रकट करने में सहायक होना चाहिए, न कि उन्हें दमन करने में। अगर आपने गुरु से मंत्र लिया और एक ही सप्ताह में आपको पूर्ण धारणा प्राप्त होने लगे, तो यह समझ लीजिए कि आपके विचारों का दमन हो गया है, क्योंकि मन की अभिव्यक्ति ही हर यौगिक और तांत्रिक पद्धति का आधार है।

एक महा जागरण

चक्रों और सुषुम्ना के जाग्रत होने के बाद कुण्डलिनी का जागरण होता है। कुण्डलिनी जागरण मानव जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। यह हर मनुष्य की नियति है। आपको अपनी कुण्डलिनी को जागाना है, और अगर आप ऐसा नहीं करेंगे तो प्रकृति स्वयं ऐसा कर देगी। कुण्डलिनी का जाग्रत होना मानव के आध्यात्मिक विकास का चरमोत्कर्ष है। इस जागरण के फलस्वरूप एक महामानव अथवा महामानस जाति का उदय होगा।

मनुष्य ने अपना भौतिक-जैविक विकास-चक्र पूरा कर लिया है। हम लोगों में जो प्राकृतिक विकास होना था वह पूरा हो चुका है। अब इतना ही अंतर होगा कि हम या तो छोटे या लम्बे, हल्के या भारी होंगे। हो सकता है कि हम अपनी नाक खो बैठें जैसे कि हम लोगों की पूंछ खो गई है। शारीरिक, प्राकृतिक विकास पूरा हो चुका है, अब आध्यात्मिक विकास शुरू होगा। और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए योग और तंत्र विज्ञान सामने आ रहे हैं। पूरे संसार में एक महान् जागृति हो रही है। दुनिया में जहाँ भी मैं जाता हूँ, लोग यह अनुभव करना चाहते हैं कि इस मानव के पीछे कौन-सा मानव है, इस अस्तित्व के पीछे कौन-सा अस्तित्व है। लोग इस बारे में बहुत उत्सुक हैं और वे यह निश्चित रूप से जानते हैं कि योग और तंत्र के अभ्यास द्वारा ही यह अनुभव संभव है।

एक स्वतन्त्र दर्शन

हम लोगों को ऐसा बतलाया जाता है कि आत्म-साक्षात्कार के लिए सदाचारी, पवित्र और दिव्य होना आवश्यक है। मैं हमेशा ऐसा सोचा करता था कि यदि मुझे सदाचारी, पवित्र और दिव्य बनना होगा तो फिर आत्म-साक्षात्कार की आवश्यकता ही क्या रह जाएगी। एक बीमार व्यक्ति को ही चिकित्सक की आवश्यकता होती है। अज्ञानी को ही प्रकाश की आवश्यकता होती है। अपूर्ण व्यक्ति को ही दैवी अनुभूति की आवश्यकता होती है। यदि महान् बनने के लिए पहले से ही महान् होना आवश्यक है तो यह तो एक भारी परिहास ही है।

अगर आत्म-साक्षात्कार करने के लिए मुझे धार्मिक होना पड़ेगा, तो मैं तो उसके पीछे जाने से रहा, क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि पवित्र और अच्छा बनने के प्रयास में मैं अपना ही दमन करूँगा। अच्छा, भला, पवित्र, विनम्र और मृदु बनने के प्रयास में मैं आत्मघात कर रहा हूँ, मैं अपने को कुचल रहा हूँ। स्वयं के प्रति ऐसा करना सबसे बड़ा अन्याय है। और अपने प्रति किया गया यह अन्याय, आत्म-साक्षात्कार के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। आप अपने आपको मुक्त कर पाने में अभी सक्षम नहीं हो पाए हैं।

स्वाधीनता मेरा अधिकार है! मैं प्राकृतिक या सामाजिक स्वतंत्रता की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं राजनैतिक आज़ादी की बात भी नहीं कर रहा। मैं मन की स्वाधीनता, विचार की उन्मुक्तता, भावना और अनुभूति की निर्बाधता और अपने आप से संबंधित हर प्रकार की स्वतंत्रता की बात कर रहा हूँ। अगर मेरे मन में एक विचार आता है तो मैं उसकी हत्या क्यों करूँ, उसकी भर्त्सना क्यों करूँ?

अतएव, मैं कई वर्षों तक विचार करता रहा कि कैसे उस अनुभूति को प्राप्त किया जाए जो दिक्काल की सीमा से परे हो। मैं कई शिक्षकों के पास गया, और हर किसी ने मुझे रटा-रटाया सा नीरस परामर्श दिया, 'अपने आपको शुद्ध करो'। मैं सोचता था, अगर मुझे अनुभव प्राप्ति से पहले शुद्ध होना पड़ेगा तो मैं उसके लिए तैयार नहीं हूँ, क्योंकि मैं इस तथाकथित आत्म-शुद्धि में विश्वास नहीं करता था। मैं उन दिनों अपने यौवन के उभार पर था। उन शिक्षकों ने यह भी बतलाया कि तुम हिन्दू हो, इस नाते तुम्हें न तो मांस खाना है, न मद्यपान करना है और स्त्रियों से दूर ही रहना है, इत्यादि।

हर देश, समाज, संस्कृति और धर्म के अपने विधि-निषेध होते हैं। आप लोगों में भी ऐसी वर्जनाएँ होंगी। और जो मैं आपको बता रहा हूँ, उसका संबंध

आपकी जातीय या राष्ट्रीय वर्जनाओं से नहीं है। वर्जनाओं को आप मानें या न मानें, यह आप के उपर है। आप जो कुछ भी हैं, जहाँ भी हैं, आपको अपने जीवन की योजना में लेश मात्र भी परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है, पर एक काम आपको करना होगा, कदम-कदम पर आपको अपनी आंतरिक अनुभूतियों को विकसित करना होगा। पहले आनंददायक अनुभवों को प्राप्त कीजिए, फिर अनोखे और अजीब अनुभवों को प्राप्त कीजिए और अंततः विस्फोटक अनुभवों को प्राप्त कीजिए। ये विस्फोटक अनुभव कुण्डलिनी जागरण से जुड़े हैं और सुखद अनुभव आपके विभिन्न चक्रों के जागरण से संबंधित हैं।

सुख एवं दुःख

मैंने मेरुदण्ड में स्थित छः चक्रों की चर्चा की है, पर इसके अलावा, शरीर में सैकड़ों अतीन्द्रिय केन्द्र चारों ओर फैले हुए हैं। ये अतीन्द्रिय केन्द्र जो आपके शरीर में विभिन्न स्थानों पर स्थित हैं, आपको मृदु, सुखद एवं आनंददायक अनुभव प्रदान करते हैं, और ऐसा उन्होंने किया भी होगा, परन्तु आप उसे नहीं जान पाए होंगे, क्योंकि आपके सोचने की प्रक्रिया बहुत अपरिपक्व रही है।

जब आप खुशी का अनुभव करते हैं, तो वह क्या है? जब आप आनंद में होते हैं तो वह क्या है? क्या वह एक अनुभव है? खुशी एक अनुभव है। और यह अनुभव आखिर कहाँ से आता है? क्या वह आपकी पत्नी के कारण आता है जो अभी बाहर से लौटी है? क्या वह आपके बच्चे के कारण आता है जो तुरंत ही छात्रावास से लौटकर आया है? या फिर उस आमदनी से जो आपको व्यापार में हुई है? आखिर यह अनुभव आया कहाँ से? ये अनुभव आपके शरीर में स्थित लघु चक्रों और अतीन्द्रिय केन्द्रों से निःसृत होते हैं।

न केवल खुशी, बल्कि दुःख भी एक अनुभव है। कष्ट एवं पीड़ा भी अनुभव हैं, बल्कि वे आनंद से श्रेष्ठ अनुभव हैं। याद रखिए दुःख सुख से श्रेष्ठ अनुभव है। निराशा, संतोष से श्रेष्ठ अनुभव है, क्योंकि अप्रसन्नता, कष्ट, पीड़ा, वेदना, निराशा, भय और वासना शरीर के लघु चक्रों के द्वारा प्राप्त अनुभव हैं। मैं यहाँ छः मुख्य चक्रों की बात नहीं कर रहा, बल्कि बाकी के लघु चक्रों की बात कर रहा हूँ।

चक्र लघु और बृहत्, दोनों प्रकार के होते हैं। खुशी लघु चक्र से पैदा होती है। आनंद और संतोष लघु चक्रों से पैदा होते हैं, फिर भी आप इन्हें पाना

चाहते हैं। आपको कोई यह सलाह नहीं देगा की दर्द को अनुभव कीजिए, पर मैं कहता हूँ – वेदना और यंत्रणा को अनुभव करो। अनुभव का नाम ही है, यंत्रणा, गरीबी, बीमारी, आघात और अपमान। कौन चाहता है इन्हें? कोई नहीं। पर ईसा मसीह ने इन्हें चाहा और आज भी हम उनकी पूजा करते हैं। क्या आप सूली पर लटकना चाहेंगे? संत टेरेसा पूरी जिन्दगी दर्द, बीमारी और अवसाद से जूझती रहीं।

आंतरिक आनंद की परिभाषा क्या है? आंतरिक उल्लास और हर्ष की परिभाषा क्या है? आपकी अपनी परिभाषा है, हमारी अपनी। जब हठयोग के

अभ्यास द्वारा आपके लघु और बृहत् चक्र जागृत होते हैं तो आपको अच्छा स्वास्थ एवं आनंद प्राप्त होता है। हठयोग की क्रियाएँ जैसे नेति, कुंजल, शंख-प्रक्षालन, उड्डियान बंध इत्यादि जिन्हें आप अपने योग शिक्षक से सीख सकते हैं, ये मात्र शारीरिक और शुद्धिकरण की क्रियायें नहीं हैं।

निश्चित ही वे आपके शरीर को शुद्ध करती हैं, यह सच है, पर वे आपके लघु और बृहत् चक्रों को भी शुद्ध करती हैं, जो इड़ा और पिंगला से संबंधित हैं। एक्यूपंक्चर विज्ञान में इन्हें 'यिन' और 'यांग' के नाम से जाना जाता है। एक्यूपंक्चर से आप पीड़ा को पैदा कर सकते हैं, पीड़ा का शमन कर सकते हैं, पीड़ा को मिटा सकते हैं या पीड़ा को अनुभव कर सकते हैं, परन्तु ये केवल शारीरिक पीड़ा है। मैं यहाँ बात कर रहा हूँ अतीन्द्रिय पीड़ा की, आध्यात्मिक पीड़ा की जिसे आप सिर्फ अनुभव कर सकते हैं, पर यह नहीं बता सकते कि वह किस निश्चित स्थान पर है।

अपने आप को खोजो

अब याद रखिए, मन, शरीर और आत्मा – ये तीन अभिव्यक्तियाँ हैं। परन्तु, मूल रूप से, तत्त्व रूप से ये एक ही हैं। दूध, दही और मक्खन, क्या ये एक हैं या अलग-अलग? ये एक ही हैं। दूध दही बनता है और दही मक्खन। उसी प्रकार शरीर जब स्थूल से सूक्ष्म में परिवर्तित होता है, तब आत्मा बन जाता है। अतएव भौतिक शरीर उस अंतर आत्मा का स्थूल रूप है।

इसलिए हठयोग, क्रियायोग, राजयोग और ध्यान इत्यादि के अभ्यास को एकीकृत कर आपको उन्हें धीरे-धीरे सीखना चाहिए। पद्मासन और सिद्धासन को पहले सिद्ध कर लें। प्राणायाम करने का अभ्यास करें। शहर के बाहर की जगह प्राणायाम और योग साधना के लिए उत्तम है। अगर आपके आस-पास जंगल है तो वहीं चले जाइये, किसी आश्रम में चले जाइये महीने भर के लिए और हर रोज केवल आधा घण्टा प्राणायाम का अभ्यास कीजिए। और फिर एक घंटा, फिर डेढ़ घंटा, फिर दो घंटा अगर आप प्राणायाम का अभ्यास करते रहेंगे तो आपको अनुभूति अवश्य प्राप्त होगी।

आप जिसको खोज रहे हैं, वह आपके बहुत निकट है। आपको बस बुद्धि के परे जाना है। मस्तिष्क से बाहर निकलिये, अपनी तलाश में लग जाइये।

– 18 दिसम्बर 1983, मैनली आश्रम, सिडनी, ऑस्ट्रेलिया

कर्म संन्यास दीक्षा

आज कर्म संन्यास में आपकी दीक्षा हो रही है। यह बड़ी महत्त्वपूर्ण दीक्षा है। कर्म संन्यास पूर्ण संन्यास से भी कठिन है, क्योंकि आपको बिना किसी का त्याग किए बाह्य जीवन और अन्तःप्रेरणा के बीच सावधानीपूर्वक संतुलन कायम रखना है। इसलिए बाह्य जीवन और आंतरिक जीवन के बीच संतुलन कायम रखना आपके लिए एक महत्त्वपूर्ण दर्शन है।

अधिकतर लोगों के लिए जीवन में आई कठिनाइयाँ और समस्याएँ या तो प्रकृति प्रदत्त दण्ड विधान है अथवा उनके दुष्कर्मों का फल हैं। संन्यासी के लिए प्रत्येक अनुभूति उसके जीवन का एक सोपान है, वह पूरक है, विरोधी नहीं। कर्म संन्यासी को यह बिन्दु और यह जीवन-दर्शन स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए, तभी जो भी आप हैं, जो भी आप करते हैं अथवा जीवन में जो भी आप अनुभव करते हैं, वही आंतरिक अनुभूति प्राप्त करने में सहायक होगा।

यदि आप यह सोचते हैं कि यह बाह्य जीवन आपके लिए हानिकारक और अध्यात्म विरोधी है तो इससे बाह्य जीवन और आंतरिक जीवन में अंतर्विरोध उत्पन्न होगा। कर्म संन्यासी के रूप में आप दोनों प्रकार के जीवन में संगति बिठाने का प्रयास कर रहे हैं। कर्म संन्यास का यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण पहलू है। यदि आप अपने जीवन की बाह्य चीजों, अपने काम-धंधे, अपने परिवार, अपने बच्चों के साथ आंतरिक अनुभूति की संगति बिठाना चाहते हैं, तो आपको इन दोनों के बीच बहुत स्पष्ट और निश्चित संबंध स्थापित करना होगा।

आपका बाह्य जीवन क्या है जिसके प्रति आप की दैनिक प्रतिबद्धता है? क्या उसका आंतरिक जीवन से कोई संबंध है? क्या वह आध्यात्मिक जीवन से जुड़ा है? यदि हाँ, तो बाह्य और आध्यात्मिक जीवन के बीच किस प्रकार का संबंध है? इस संदर्भ में याद रखने योग्य बात यह है कि दैनिक जीवन में प्राप्त होने वाली सभी प्रकार की अनुभूतियाँ – विवाद, दुःख, सफलता, हर्षोल्लास, क्रोध, हताशा अथवा शारीरिक व्याधि आपकी आंतरिक अनुभूति में बाधक नहीं है।

हममें से कई लोग इस तरह नहीं सोचते और जब क्रुद्ध या दुःखी होते हैं तो अफसोस करते हैं और नहीं चाहते कि पुनः क्रोध या दुःख का अनुभव हो। यही मानसिकता अधिकतर लोगों की है, किन्तु कर्म संन्यास में प्रकृति

द्वारा प्रदत्त हर अनुभूति हमारे आध्यात्मिक विकास में सहायक होती है। उससे हमारी आध्यात्मिक अनुभूति परिपक्व होती है, समृद्ध होती है।

कर्म संन्यासी के लिए तीन चीजें बड़ी आवश्यक हैं। पहली है उसकी दैनिक साधना, जिसे वह अपने दैनिक जीवन के लिए निश्चित कर ले। दूसरी है अपने को कर्मयोग की भावना से भरना। कर्मयोग की भावना है – सभी कार्यों और दायित्वों को अनासक्त भाव से पूरा करना। दैनिक जीवन की घटनाओं से अपने को अप्रभावित रखना ही कर्मयोग है। तीसरी चीज, गुरु के साथ आपका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक अथवा भावात्मक स्तर का नहीं, आध्यात्मिक स्तर का संबंध है। गुरु और शिष्य के बीच आध्यात्मिक संबंध की अनुभूति के लिए आपको मन की गहराई में प्रवेश करना होगा। मन के भीतर डुबकी लगाने पर आप आध्यात्मिक संबंध की अनुभूति प्राप्त करने लगेंगे। जब तक आप मन के बाहरी तल पर ही रहेंगे तब तक भौतिक संबंध, भावात्मक संबंध अथवा बौद्धिक संबंध की ही अनुभूति प्राप्त करेंगे।

आध्यात्मिक संबंध की व्याख्या अभी मैं नहीं कर सकूँगा। जब आप स्वयं मन की गहराई में प्रवेश करेंगे तो यह अनुभव प्राप्त करेंगे। ज्यों ही आप मन में गहरी डुबकी लगायेंगे, गुरु और शिष्य के संबंध की कड़ी की अनुभूति प्राप्त होगी। इस प्रकार कर्म संन्यासी के जीवन के तीन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक हैं – कर्मयोग, आध्यात्मिक साधना और गुरु के साथ संबंध।

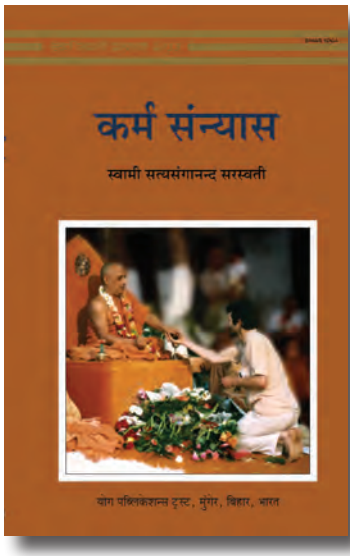

मेरे द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'कर्म संन्यास' में इसके दर्शन, सिद्धान्त और साधना संबंधी बहुत सारे विषयों की जानकारी आपको प्राप्त होगी। दूसरी पुस्तक श्रीमद् भगवद् गीता है जो कर्म संन्यासी के दैनिक जीवन में आने वाली कठिनाइयों और उनके समाधान के उपाय बताती है। उस पुस्तक से कर्म संन्यास के दार्शनिक पक्ष की जानकारी प्राप्त होगी। दोनों पुस्तकों का अध्ययन लाभदायक रहेगा।

– 17 मार्च 1984, ऑकलैण्ड कंट्री आश्रम, न्यूज़ीलैण्ड

उच्च चेतना के जागरण की विधियाँ

तंत्र विज्ञान एक प्राचीन शास्त्र है। यह किसी एक देश या संस्कृति तक सीमित नहीं रहा है। आदिकाल में भी तंत्र का अभ्यास उस समय के समाज द्वारा किया जाता था। उस जमाने में भी समुदायों में रहने वालों के बीच कोई-कोई ऐसा व्यक्ति होता था जिसे रोग मुक्त करने, लोगों के विचारों को जानने, मौसम पर नियंत्रण करने अथवा भविष्य-कथन की विशेष क्षमताएँ प्राप्त होती थीं। इतिहास के हर काल में, समुदाय में ऐसे विलक्षण लोग हुआ करते थे। वे कोई योगाभ्यास नहीं करते थे। वे अचानक ज्ञान के क्षेत्र में छलांग लगा जाते थे। संभव है वैसे लोग विलक्षण प्रतिभा लेकर जन्म लेते थे जिसका कोई तार्किक आधार नहीं होता था। वे मन, पदार्थ और इन्द्रियों के संयोग की घटना के परे होते थे।

मानव की इन्द्रियातीत क्षमताओं का स्रोत

हमारे दैनिक जीवन की अनुभूतियाँ मन, इन्द्रियों और पदार्थ के संघटन पर निर्भर रहती हैं। यदि इन तीनों का संयोजन न हो तो अनुभूतियाँ नहीं घटित होंगी। पर मैं जिन लोगों की चर्चा कर रहा हूँ उन्हें ज्ञान और अनुभूतियाँ पदार्थ, मन और इन्द्रियों के बीच बिना किसी समन्वय के ही प्राप्त हुई थीं। आदिकालीन समुदायों में ऐसे लोगों को आत्मज्ञानी, ओझा, गुणी, साधु या संत कहा जाता था। उन्हें उनकी योग्यता और संस्कृति के अनुसार विविध नामों से जाना जाता था। उनकी विशिष्ट योग्यता के कई स्रोत माने जाते थे। कुछ लोगों की मान्यता थी कि किसी प्रेतात्मा का प्रवेश उनके भीतर हो गया है जो सारी करामातें दिखाता है। कुछ का मानना था कि औषधि-प्रयोग से वे विलक्षण योग्यताएँ हासिल की गई हैं। कुछ अन्यों की धारणा थी कि किसी देवी-देवता या साक्षात् परमात्मा की विशेष कृपा के कारण वे इतनी योग्यताएँ प्राप्त कर चुके हैं। इन अतीन्द्रिय योग्यताओं के विविध कारण बताए जाते थे।

भारत में लोग इन अतीन्द्रिय शक्तियों के सही कारणों का पता करने का प्रयास करते थे। क्या वे बाह्य प्रेतात्माओं की करामातें थीं या मानवीय प्रणाली में सहज क्रमिक विकास का परिणाम थीं? अनुसंधान और शोध के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उन विशिष्ट व्यक्तियों में ये लक्षण मन या चेतना

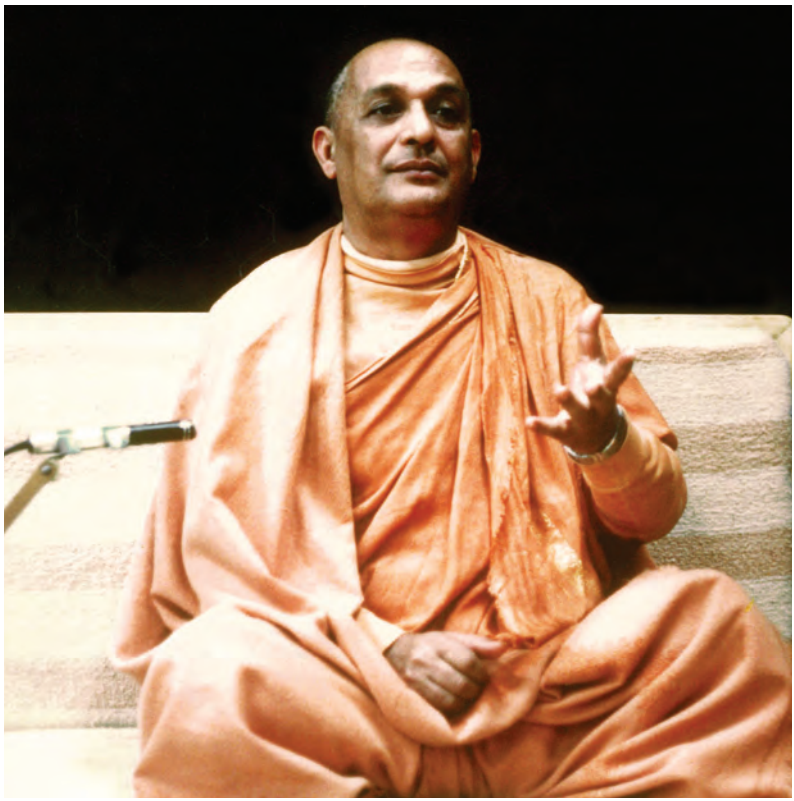

के विस्तार के कारण प्रकट हुए थे। उन व्यक्तियों में चेतना का यह विस्तार सहज रूप से आनुवांशिक कारणों से हुआ था। इसे ऊर्जा का विमोचन भी कह सकते हैं। पर ऊर्जा का यह विमोचन या निर्बन्धन क्या है?

विखण्डन और संलयन की प्रक्रिया

मैं इसकी तांत्रिक व्याख्या करूँगा। दूध को मथने से मक्खन मुक्त होता है। मक्खन आजाद होता है, वह निर्बन्ध होता है। उसी प्रकार पदार्थ से जब तत्त्वों को अलग करते हैं, जैसे यूरेनियम, तो ऊर्जा मुक्त होती है, जैसे नाभिकीय ऊर्जा। सभी प्रकार के पदार्थों में कुछ मात्रा में ऊर्जा रहती है। तांत्रिक विज्ञान के अनुसार पदार्थ ऊर्जा धारण नहीं करता, वह ऊर्जा का स्थूल रूप है, इसलिए पदार्थ और कुछ नहीं ऊर्जा ही है। अतः पदार्थ को पूर्णतः ऊर्जा में रूपांतरित किया जा सकता है। उसी प्रकार ऊर्जा को भी पूरा का पूरा पदार्थ में परिवर्तित

किया जा सकता है। इस प्रकार पदार्थ और ऊर्जा दोनों अलग-अलग चीजें नहीं हैं। पदार्थ एक अवस्था में रूपांतरित होने पर ऊर्जा के समकक्ष हो जाता है।

ऊर्जा को पदार्थ से मुक्त होना है। ऊर्जा को मुक्त करने हेतु एक प्रक्रिया का आरंभ होना आवश्यक है। नाभिकीय विज्ञान में दो प्रक्रियाएँ हैं, एक को 'फिशन' या विखण्डन और दूसरी को 'फ्यूज़न' या संलयन कहते हैं। नाभिकीय ऊर्जा के विमोचन में इन दोनों प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है।

व्यक्ति को अपनी ऊर्जा को मुक्त करने हेतु भी उन्हीं विखण्डन और संलयन प्रक्रियाओं को प्रयोग में लाना पड़ता है। जब हम विखण्डन कहते हैं तो हमारा मतलब है आप विचार और अनुभव को अनुभावक से विलग करें। द्रष्टा से दृश्य को अलग कीजिए। द्रष्टा क्या देखता है? वह किसी पदार्थ को देखता है। वह क्या सोचता है? वह विचार का चिन्तन करता है। साक्षी क्या देखता है? वह किसी घटना को देखता है।

हमारे भीतर एक अनुभावक है। वह अनुभावक अनुभव कर रहा है, देख रहा है। वह प्रत्येक प्रक्रिया को देख रहा है और अनुभव कर रहा है। किन्तु ये दोनों – अनुभावक और अनुभूति, चाय और चीनी की तरह परस्पर इतने घुल-मिल गए हैं, इतने अन्तर्ग्रथित हो गए हैं कि हम दार्शनिक और बुद्धिजीवी उन्हें दो जानते हैं, किन्तु दो देखते नहीं। हम द्रष्टा और दृश्य को अलग-अलग नहीं कर पाते।

इसी अलग-अलग करने को विखण्डन कहते हैं। आपको द्रष्टा और दृश्य को अलग करना होगा। जब हम द्रष्टा को पदार्थ से, साक्षी को घटना से पृथक् करते रहते हैं, उस समय जो घटित होता है योग कहलाता है।

सांख्य प्रणाली में, जो योग और तंत्र का मूल दर्शन है, द्रष्टा और दृश्य या साक्षी और घटना नहीं कहते हैं। वहाँ पुरुष और प्रकृति पदों का प्रयोग किया गया है। चेतना पुरुष है और अनुभूतियाँ अथवा घटनाएँ प्रकृति हैं।

संपूर्ण सृष्टि, समस्त अस्तित्व प्रकृति है। पुरुष चेतना है, जो दिक्काल का द्रष्टा, समस्त घटनाओं का द्रष्टा, अतीत, भविष्य और वर्तमान का द्रष्टा, सर्वद्रष्टा है। आप वही हैं, पर आप अपने को पुरुष की अवस्था में अनुभव नहीं कर सकते, क्योंकि जब कभी आप शुद्ध पुरुष अवस्था में अपनी अनुभूति प्राप्त करना चाहते हैं, आप दिक् और काल की परिधि में अनुभूति करने लग जाते हैं। शुद्ध आत्मानुभूति, चेतना की विशुद्ध अनुभूति नहीं हो पाती। पहले इसको करना होगा। यह संलयन है।

जब आप किसी विशेष बिन्दु, पदार्थ, विचार या द्रव्य पर मन को एकाग्र कर रहे हैं तो उस समय संपूर्ण चेतना उस विषय या वस्तु में लय होनी चाहिए ताकि उस काल में आप आत्म चेतना खो दें। आप भूल जाएँ कि मैं हूँ। इन दोनों प्रक्रियाओं को स्थापित करना होगा। एक में आप अपने प्रति और अनुभवों के प्रति जाग्रत हो जाते हैं। वह विखण्डन हुआ, पृथक्करण। दूसरे में आप अपनी चेतना को खो देते हैं और अनुभूति में उसका विलय कर देते हैं। यह प्रक्रिया संलयन हुई। इसे ही तंत्र कहते हैं।

आत्मानुसंधान का आरंभ

तंत्र शास्त्र में बड़े स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मन ही हर क्षेत्र में जागरण और ज्ञान का साधन है। यह मन असीमित ढंग से काम कर सकता है, किन्तु सीमा से अधिक कार्य करने हेतु मन को प्रशिक्षित करना होगा। मन की सीमा होती है। कोई वस्तु यहाँ हो तो आप देख सकते हैं, यदि वह यहाँ नहीं हो तो आप उसे देख नहीं सकते हैं। यदि यहाँ संगीत चल रहा हो, तो आप सुन सकते हैं। यदि यहाँ संगीत नहीं चल रहा हो तो आप नहीं सुन सकते हैं। मन की यही सीमा है।

मन का विस्तार क्या है? जब मन बिना किसी वस्तु की सहायता के, बिना इन्द्रियों की सहायता के किसी चीज की अनुभूति प्राप्त कर ले तो इसे मन का विस्तार कहते हैं। यदि कहीं शान्तिपूर्वक बैठकर अपने अंतर में सहज रूप से किसी संगीत की स्वर-लहरी सुनने लगें, अथवा अपने अन्तर में कोई सुन्दर या भयप्रद, कुछ प्रिय अथवा अप्रिय चीज देखने लग जायें तो इसे मन का विस्तार कहा जाएगा। कारण यह कि आपका मन बिना किसी बाह्य आधार के बोध प्राप्त कर रहा है।

ऐसे में थोड़ी मात्रा में ऊर्जा का विसर्जन होता है और ऊर्जा के इस विमोचन को जागरण कहा जाता है। इस संदर्भ में तंत्र ने हठ-योग, क्रिया-योग और मंत्र-योग संबंधी यौगिक प्रक्रियाओं की स्थापना की है। ये तंत्र की शाखाएँ हैं। ये तंत्र से भिन्न नहीं हैं। योग तो तंत्र का व्यावहारिक पक्ष है।

इस तांत्रिक पद्धति में हजारों वर्षों से बहुत सारे प्रयोग हुए हैं। उनमें से कई प्रयोग आज के लिए उपयुक्त नहीं हैं। तंत्र पर पुस्तकें लिखने वाले लोग उन भयप्रद प्रयोगों को लिखने से बाज नहीं आते और उन्हें पढ़कर लोग उनका उपयोग करने लग जाते हैं। ये आज के लिए उपयोगी नहीं हैं। हर युग में योग

और तंत्र को उस युग की संस्कृति के अनुरूप ढालकर लोगों को बताना चाहिए। अभ्यास और साधना उसी के अनुरूप होनी चाहिए।

प्राचीन काल में सोम-पान कर लोग चेतना को जाग्रत करने की चेष्टा करते थे जिसे बाद में त्याग दिया गया, क्योंकि स्थायी जागृति नहीं होती थी। उन लोगों ने यह भी अनुभव किया कि सोम-पान के बाद यदि मन का विस्तार होता था और ऊर्जा का विमोचन होता था तो वे उस अनुभूति को संभाल नहीं पाते थे। बाद में और कई औषधियों को भी इस हेतु आजमाया गया। उन लोगों ने गाँजा और हशीश भी आजमाया जिसका अभी पाश्चात्य देशों में प्रचलन है, पर उसका भी उन्होंने त्याग कर दिया।

आदिकाल में जनजातियाँ भी चेतना-विस्तार हेतु कई चीजों का प्रयोग करती थीं। यहाँ अजायबघर में प्राचीन जनजातियों के कुछ प्रतीक, जिन्हें टिकी कहते हैं, रखे हुए हैं। अब इनके मूल का पता लोग भूल गए हैं, पर उन दिनों इनका प्रयोग अतीन्द्रिय संस्थान को प्रभावित करने और मन के अतीन्द्रिय आयाम के विस्तार के लिए किया जाता था। इसलिए आनंदोत्सवों के समय वे उनका प्रयोग करते थे और इनके इर्द-गिर्द नृत्य करते थे। नृत्य और संगीत के अभ्यासों से उनकी उच्चतर चेतना का विस्तार होता था।

संसार की कई जनजातियों में आत्म-संस्कृति के विकास हेतु प्रतीकों का प्रयोग होता था। अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, भारत, फारस, मध्य पूर्व, स्कैंडिनेविया, जापान, चीन आदि सभी देशों में यह प्रचलन था। ये प्रतीक देवत्व के प्रतीक माने जाते थे और इनके माध्यम से वे लोग अपने अंतर में स्थित ऊर्जा का विस्फोट करते थे। वे मैथुन-संबंधों से भी ऊर्जा का विमचोन करते थे। तंत्र में इसे पंच मकार कहते हैं – मदिरा, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन। प्राचीनकाल से आज तक विश्व के सभी तांत्रिक ग्रंथों के लेखक इन पंच मकारों पर अवश्य प्रकाश डालते हैं ताकि तंत्र के इस पहलू की जानकारी लोगों को हो जाए।

लोगों ने तंत्र के इस पक्ष को भी आजमाया, लेकिन उन्हें लगा कि इन साधनों की अपनी सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक सीमाएँ हैं। यदि आप कई वर्षों तक गाँजा या हशीश का सेवन करते रहेंगे तो आपकी स्मरण-शक्ति और आपके फेफड़े नष्ट हो जायेंगे। यदि आप इन पंच मकारों का प्रयोग करेंगे तो नैतिक अनाचार फैलेगा, सारे देश में समस्या पैदा हो जाएगी।

इन आचारों के अतिरिक्त महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों में पाँच पारम्परिक विधियाँ आत्म जागरण हेतु बताई गई हैं। यदि आप अपनी चेतना में पूर्णता

लाना चाहते हैं, अपनी ऊर्जाओं की वृद्धि चाहते हैं और अपने जागरण की गुणवत्ता में निखार लाना चाहते हैं तो इन पाँच विधियों को आजमा सकते हैं – अनुकूल जन्म, मंत्र, तपस्या, जड़ी-बूटी और धारणा।

जन्मजात जागरण

इन पाँचों विधियों में प्रथम जन्मजात है जिस पर इस जन्म में हमारा कोई वश नहीं है। पारिवारिक व्यक्ति के रूप में आप जाग्रत संतति पैदा कर सकते हैं जो जन्म से ही उच्च संस्कारों के साथ इस धरती पर अवतरित होगी। अपने गहरे विचार, अपनी संकल्प-शक्ति, अपनी अतीन्द्रिय कल्पना, अपने मन की स्पन्दनशील सम्प्रेषण शक्ति और अपनी वासना पर नियंत्रण करके आप एक नारी के गर्भ में उन्नत बीज डाल सकते हैं जो आत्मोन्नत व्यक्ति को पैदा करे।

हाल के वर्षों में आनुवांशिक अभियांत्रिकी की बड़ी चर्चा चल रही है। यह विषय योगियों के मन में भी था। गीता में स्पष्ट उल्लेख है कि जिन लोगों ने इस जीवन में योग साधना पूरी नहीं की है, जिन्हें योग का वांछित फल नहीं प्राप्त हुआ है, जिन्होंने योग का चरम लक्ष्य नहीं प्राप्त किया है, उन्हें अनुकूल परिवेश में पुनः जन्म लेना पड़ता है ताकि वे अधूरी यौगिक साधना को दूसरे जन्म में भी जारी रख सकें। वे या तो किसी योगी के परिवार में जन्म लेते हैं जिन्हें उच्चतर चेतना प्राप्त है अथवा शुद्ध सात्त्विक, समृद्ध परिवार में उनका जन्म होता है, जहाँ वे अपनी पूर्व जन्म में आरंभ की गई यौगिक साधना को पूर्णता तक ले जा सकें। यदि योगी के घर पैदा होते हैं तो उनकी चेतना इतनी प्रबल होती है कि वे अपने परिवार का त्याग कर योगाभ्यास में प्रवेश कर सकते हैं। उन्हें पारिवारिक जीवन की आवश्यकता नहीं रहती।

इसका अर्थ यह है कि तंत्र वैज्ञानिक इस तथ्य के प्रति काफी जागरूक थे कि माता-पिता अपनी होने वाली संतान की गुणवत्ता की कामना कर सकते हैं। आपकी संतति को मात्र आपकी वासना का प्रतिरूप नहीं होना चाहिए। क्या आप नींबू, आम अथवा अमरूद सिर्फ दिखाने के लिए पैदा करते हैं? नहीं। आप उन वृक्षों से अत्युत्तम, सुस्वादु और स्वास्थ्यवर्द्धक फल प्राप्त करना चाहते हैं। यदि आप श्रेष्ठ, गुणयुक्त फल पैदा करने की कोशिश करते हैं तो उच्चतर चेतना और उन्नत गुणयुक्त संतान क्यों नहीं पैदा करना चाहते?

हम लोगों में अधिकतर लोग अपनी पैदा होने वाली संतति के गुण-दोष के बारे में नहीं सोचते। हम लोग ऐसे बच्चे पैदा करना चाहते हैं जिन्हें हम

भरपूर लाड़-प्यार कर सकें, जैसे वे हमारी आत्मरति की वस्तु हों। योगी इस मामले में बड़ा स्पष्ट होता है। या तो वह बच्चे पैदा नहीं करता और अगर करता है तो गुणों के समुचित योग से ताकि वह शिशु उन्नत और विकसित आत्म चेतना और आध्यात्मिक गुण सम्पन्न हो।

इसी को जन्मजात जागरण कहते हैं। इससे संबंधित और भी जरूरी बातें हैं जो आप बाद में समझेंगे। मानव जाति के विकास के लिए आत्म जागरण की यह विधि बड़े महत्त्व की है, क्योंकि विश्व में परिवर्तन लाने के लिए धर्म या सरकारों की आवश्यकता नहीं है – उच्चतर गुणों से सम्पन्न लोगों की आवश्यकता है। अच्छे कानून, अच्छी पुलिस और अच्छे धर्म से अच्छी मानवता नहीं पैदा हो सकती। समुन्नत मन और चेतना पैदा करने की आवश्यकता है।

मंत्र-विधि

आत्म जागृति की द्वितीय विधि मंत्र है। आपको कोई अतीन्द्रिय अनुभूति न भी हो, मंत्र द्वारा आपकी धारणा भी पुष्ट न हो, आप मंत्र को पसंद भी न करें, फिर भी, जो मंत्र आप प्रतिदिन नियमित रूप से जपते हैं, वह शक्ति को

जाग्रत करता है, उससे शक्ति का विस्फोट होता है। यह एक महत्त्वपूर्ण मार्ग है, क्योंकि यह सभी लोगों द्वारा उपयोग में लाया जा सकता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे जीवन के किस स्तर पर हैं।

तपस्या

जागरण की तीसरी विधि तपस्या है। तपस्या का अर्थ है – अपने व्यक्तित्व के अवांछित तत्त्वों को जलाकर, नष्ट कर आत्म शुद्धिकरण की प्रक्रिया। हम जानते हैं कि हमारे व्यक्तित्व के इन नकारात्मक तत्त्वों को दग्ध कर नष्ट किया जा सकता है। फिर क्या होगा?

मन की अशुद्धियों के नष्ट हो जाने पर मन स्वस्थ हो जाता है। शरीर की अशुद्धियों के जल कर नष्ट हो जाने पर शरीर शुद्ध हो जाता है। संवेगों की अशुद्धियाँ समाप्त हो जाने पर संवेग शुद्ध हो जाते हैं। शरीर, मन और भावना को स्वस्थ रखने हेतु उनके अवांछित तत्त्वों को दूर करना होगा। यदि यह कमरा जीर्ण-शीर्ण हो जाता है तो आप इसे साफ-सुथरा करना चाहते हैं, इसमें कुर्सी-मेज और बिजली के तार आदि नये सिरे से लगाना चाहते हैं। यही तपस्या का सिद्धान्त है।

तपस्या कई विधियों से की जाती है। शारीरिक और मानसिक तपस्या होती है, वाचिक तपस्या भी होती है। सात्त्विक, राजसिक और तामसिक तपस्या है। तामसिक तपस्या में हम शरीर को कष्ट देना चाहते हैं। शरीर और मन दोनों को कष्ट सहना पड़ता है। राजसिक तपस्या में हम एक दिन उपवास रखते हैं, फिर दो दिन जी भरके खाते हैं! भारत जाओ, वहाँ न धूमपान कर सकते हो, न मद्यपान। घर लौटकर खूब धूम्रपान और मद्यपान करो, यह राजसिक तपस्या है।

सात्त्विक तपस्या बड़ी शान्त और संयत है। आपको अपने शरीर, मन और भावना की क्षमता के अनुरूप चलना है। इसमें न उपवास रखना है, न दबाकर खाना है। न यह करना है, न उससे परहेज रखना है। गीता में आपको विस्तार से तपस्या के विविध प्रकारों के बारे में पढ़ने को मिलेगा।

जड़ी-बूटी का प्रयोग

आत्म-जागरण की चौथी विधि जड़ी-बूटी है। मैं आपको साफ-साफ बता देना चाहूँगा कि इसकी जानकारी किसी को नहीं है। गुरुओं और तांत्रिकों ने

इसमें बड़ी गोपनीयता बरती है। ये जड़ी-बूटियाँ न तो हशीश है, न पियोट, न ही सोम। इन जड़ी-बूटियों के प्रयोग से मानसिक और आंतरिक चेतना में स्थिरता और समता उत्पन्न होती है। गुरु की देखरेख में ही इनका सेवन करना चाहिए।

ऐसा नहीं कि ये जड़ी-बूटियाँ दुर्लभ स्थानों में ही मिलती हैं। भारत में इन्हें अपने दैनिक जीवन में भी यदा-कदा उपयोग में लाया जाता है, इसलिए इन्हें खोजने के लिए आपको हिमालय या विन्ध्याचल जाने की जरूरत नहीं। आप इसे अपने निजी उद्यान में भी उगा सकते हैं, पर आपको इसके उपयोग की समुचित विधि जाननी होगी।

धारणा

आत्म-जागरण की पाँचवीं विधि बड़ी महत्त्वपूर्ण है। पातंजल योग सूत्रों में इसका विस्तृत वर्णन है। जब धारणा और ध्यान एक साथ घटित हो जाय तो चेतना की संपूर्णता प्राप्त हो जाती है। इसे संयम कहते हैं। संयम का अर्थ स्वतःस्फूर्त धारणा और ध्यान है जिसमें चेतना ध्यान के प्रतीक में पूर्णतः तल्लीन हो जाती है। मान लो, आप दीपक की ज्योति पर एकाग्रता साध रहे हैं। ध्यान करते समय आप अपने मन में उसकी छवि को टिकाए रखना चाहते हैं। यह धारणा है। आप अचानक स्वयं को भूल जाते हैं। आप भूल जाते हैं कि आप ध्यान या धारणा कर रहे हैं – सिर्फ आग की लौ रह जाती है। ध्याता, ध्यान-प्रक्रिया, सब समाप्त हो जाता है। सिर्फ अग्नि-शिखा पर एकाग्र-चित्तता बनी रह जाती है। यही संयम कहलाता है।

संयम को प्राप्त करने हेतु कई विधियाँ हैं। एक ही विधि सबके लिए उपयुक्त नहीं है। धारणा का एक मार्ग प्राणायाम है। प्राणायाम धारणा, ध्यान और समाधि का शक्तिशाली साधन है। हठ-योग के अनुसार मन और प्राण एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। जब प्राण में विक्षेप आता है तो मन भी विक्षिप्त हो जाता है और जब प्राण में समरसता रहती है तो मन भी समरस रहता है। मन में एकाग्रता लाकर प्राण को भी नियंत्रित किया जा सकता है। यह राज-योग है। लेकिन हठ-योग में पहले हम प्राण को नियंत्रित करते हैं तो मन स्वतः नियंत्रित हो जाता है।

– 18 मार्च 1984, ऑकलैण्ड कंट्री आश्रम, न्यूज़ीलैण्ड

कल्पतरु की छाँव में

जीवन में समर्पण का भाव कैसे विकसित किया जाए?

समर्पण के विषय को बुद्धिगम्य बनाना बड़ा कठिन है, क्योंकि यह ऐसा विषय नहीं जिस पर चर्चा की जा सके। यह एक अनुभूति है। अपने स्थूल अहंकार के विलीन होने की अनुभूति। यह अहंकार व्यक्तिगत सत्ता का आधार है। जब तुम किसी मंदिर या गिरजाघर में जाकर प्रार्थना करते हो तब बेशक समर्पण के कुछ शब्द भी कहते होगे, 'मैं तुम्हारा हूँ, यह सब तुम्हारा ही है, मैं तुम्हारी सेवा में रहूँगा।' लेकिन यह केवल वाचिक समर्पण है, वास्तविक समर्पण नहीं।

वास्तविक समर्पण तब घटित होता है जब तुम अहम् को तिरोहित करते हो। यह अहम् तुम और तुम्हारे परमात्मा के बीच, तुम और तुम्हारे गुरु के बीच, या तुम और तुम्हारी अन्तरात्मा के बीच दीवार बनकर खड़ा है। समर्पण को समझने के लिए सर्वप्रथम एक गुरु का चुनाव करो। समर्पण का प्राथमिक पाठ अपने गुरु के प्रति समर्पित होकर सीखो, उसके बाद परमात्मा के प्रति समर्पण का अभ्यास करो। जब तुम परमात्मा के प्रति समर्पित हो जाओगे, तब जीवन आनन्द से भर जायेगा। सुख-दुःख, आह्लाद-विषाद, हानि-लाभ, सब तुम्हारे लिए बराबर हो जायेंगे, क्योंकि तुमने अपने को परमात्मा के प्रति समर्पित कर दिया है। इसलिए वह जो भी तुम्हें देगा, सब स्वागत योग्य होगा।

प्रत्येक व्यक्ति की कामना रहती है कि उसका जीवन उत्तम हो। हर कोई सुख की कामना करता है, स्वस्थ जीवन की लालसा रखता है। कोई व्यक्ति दुःखी नहीं रहना चाहता, बीमार नहीं होना चाहता। लेकिन क्यों? तुम हमेशा अपनी ही पसंद पर क्यों बल देते हो? तुम चुनाव क्यों करना चाहते हो? प्रभु को ही चुनाव करने दो। एक उच्च सत्य है, एक बड़ा विधान है – विश्व-विधान। यह विश्व-विधान एक शक्तिशाली, बुद्धि-सम्पन्न विधान है, जो सभी घटनाओं का नियन्ता है। तुम्हारे जन्म, तुम्हारे अस्तित्व, तुम्हारे जीवन के प्रत्येक अनुभव के लिए यही जिम्मेवार है। यही अनुभूति तुम्हारे भीतर प्रकट होनी चाहिए।

यदि किसी के अपने इष्ट देवता हैं, जिनके प्रति वह भक्ति-भाव से समर्पित है, तो क्या ऐसे व्यक्ति के लिए भी गुरु बनाना आवश्यक है, और क्या गुरु के प्रति भी उसका वैसा ही भक्ति-भाव रहना चाहिए?

आध्यात्मिक साधना में इष्ट देवता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। तुम्हारे अन्दर उसकी अनुभूति सदा बनी रहनी चाहिए। किन्तु गुरु का महत्त्व और अधिक है, क्योंकि गुरु के माध्यम से ही इष्ट देवता की आन्तरिक अनुभूति अधिक स्पष्ट होती है। अंततः गुरु और इष्ट देवता, दोनों एकाकार हो जाते हैं। लेकिन प्रारंभ में गुरु हमारी आन्तरिक शक्ति को जागृत करने वाला होता है और इष्ट देवता वह स्वरूप होता है जो ध्यान की गहराई में प्रकट होता है। इसलिए तुम्हें इन दोनों की आवश्यकता है।

– 17 दिसम्बर 1983, मैन्ग्रोव माउन्टेन, ऑस्ट्रेलिया

स्त्री के रूप में क्या मैं संन्यास-जीवन से लाभान्वित हो सकती हूँ?

हमारे समाज में यदि कोई संन्यास से अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकता है तो वह स्त्री ही है। संन्यास ग्रहण करने के बाद उनको एक हैसियत प्राप्त हो जाती है। यदि वे अविवाहिता हैं तो मैं नहीं समझता कि उनको कोई हैसियत प्राप्त

है। और बहुत-सी स्त्रियों के लिए तो विवाह एक महा-विनाश है। हम लोग विवाह-बंधन में फँसते हैं, क्योंकि हम नहीं जानते कि यह क्या है। किन्तु एक बार हम जान जाएँ तो इसके लिए कभी तत्परता नहीं दिखाएँगे।

यदि तुम संन्यास ग्रहण करती हो तो तुम अपने मूल स्वभाव को उपयोग में ला सकती हो। स्त्रियाँ सामान्यतः बड़ी भावुक, भक्त और आध्यात्मिक जीवन की बारीकियों के प्रति अत्यन्त सजग होती हैं। आज की इस दुनिया में यदि आध्यात्मिकता, पवित्रता, विनम्रता एवं गरिमा के लिए कोई सम्मान बचा है तो वह स्त्रियों के कारण ही। उन्होंने इसकी रक्षा की है और इसके लिए संघर्ष किया है। उनमें यह जो नैसर्गिक क्षमता है, उसकी यथोचित अभिव्यक्ति उनके संन्यास ग्रहण करने पर ही होगी।

दुष्कर, दृढ़ और कठोर नियम-अनुशासन, जो संन्यस्त जीवन के लिए अनिवार्य शर्त हैं, स्त्रियाँ सहजतापूर्वक अपना लेती हैं। उनमें इतनी भक्ति, श्रद्धा और निष्ठा है कि वे सहजतापूर्वक आत्मगौरव और आत्मसम्मान के साथ अपने गुरु के साथ सम्बन्ध निभा सकती हैं। मैंने यह भी देखा है कि आश्रम और संन्यास-जीवन में महिलाओं ने पुरुषों की अपेक्षा अच्छा कार्य किया है। उनके मन अधिक शान्त और एकाग्र होते हैं। कुण्डलिनी-जागरण की प्रक्रिया में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक सहजता होती है। निश्चय ही उन्हें समग्र सुविधाएँ उपलब्ध हैं और पुरुषों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से उनका कुण्डलिनी-जागरण सम्पन्न होता है।

मेरी राय में जो महिलाएँ परिवार एवं शिशुओं के दायित्व का निर्वाह करने के लिए तैयार हैं, वे यह कर सकती हैं, किन्तु जो इसके लिए तैयार नहीं हैं, उन्हें संन्यास-जीवन ग्रहण करना चाहिए। संन्यास लेने और कुछ काल तक प्रशिक्षण लेने के बाद आंतरिक शक्ति, आत्मविश्वास एवं ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् वे मानवता की सेवा के लिए समाज में आ सकती हैं। यदि वे योगाश्रम खोलना चाहती हैं तो खोल सकती हैं। यदि वे दातव्य औषधालय, अनाथालय या विद्यालय खोलना चाहें तो खोल सकती हैं, और यदि अन्य सेवा कार्य करना चाहें तो कर सकती हैं। यदि वे किसी गुफा में प्रवेश कर, पूर्ण एकान्त में बैठकर सप्ताह, महीना या वर्षों के लिए ध्यान में उतरना चाहती हैं तो वे यह भी कर सकती हैं।

संन्यासी के रूप में तुम्हारी कोई सीमा नहीं है, तुम कोई भी काम कर सकती हो। तुम भवन निर्माता, रसोइया, कलाकार, प्रबन्धक, शिक्षक और

यदि चाहो तो परिव्राजक भी बन सकती हो। तुम अपनी आंतरिक क्षमता की अभिव्यक्ति गरिमा, स्वतंत्रता एवं सम्मान के साथ किसी भी रूप में अपने इच्छानुसार कर सकती हो। जो महिलाएँ पारिवारिक जीवन में प्रवेश करना नहीं चाहतीं, उनके लिए संन्यास-पथ महानतम अवसर प्रदान करता है।

– 22 नवम्बर 1983, मैन्ग्रोव माउन्टेन, ऑस्ट्रेलिया

आप योग-शिक्षा प्रदान करने के लिए संसार के भिन्न-भिन्न भागों में क्यों भ्रमण करते हैं?

सर्वप्रथम मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि सारी दुनिया में योग-विद्या के प्रचार के लिए भ्रमण करना मेरी मर्जी या पसन्द का विषय नहीं है। मैं ऐसा इसलिए करता हूँ कि मुझे इसके लिए प्रेरणा मिली है। जब सन् 1956 के अप्रैल में मैंने अपने गुरुजी के अन्तिम दर्शन किये तो उन्होंने मुझे क्रिया-योग की दीक्षा दी और कहा, 'तुमको भारत की सीमा से बाहर संसार के प्रत्येक भाग में जाना होगा, संस्कृति-भाषा आदि की सीमा को पार करना होगा और प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक प्रेरणा बनना होगा। तुम्हें लोगों में उत्साह भरना होगा कि वे अपने आध्यात्मिक विकास के निमित्त थोड़ा-सा योगाभ्यास अवश्य करें।'

उसी समय से, जहाँ कहीं मैं जाता हूँ, अगर एक भी व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से सजग और बहिर्मुखी की अपेक्षा अन्तर्मुखी बनता है, तो मैं उस देश में पहुँचने का अपना उद्देश्य पूरा हुआ समझता हूँ। जब मैं सन् 1968 में ऑस्ट्रेलिया पहली बार आया तो मैं किसी को नहीं जानता था। लेकिन अब मैं यहाँ सैकड़ों-हजारों लोगों को जानता हूँ, जो गृहस्थ, संन्यासी या कर्म-संन्यासी के रूप में वास्तव में आध्यात्मिक जीवन बिता रहे हैं।

यह बाहरी दुनिया तो अपनी जगह पर है ही, और हम इसे बहुत अच्छी तरह जानते हैं। किन्तु हमारे भीतर में, अपरिपक्व अवस्था में ही सही, एक अनुभव और है और वह है प्रकाश का अनुभव, पूर्ण सजगता का अनुभव। जब हम उस मार्ग पर अग्रसर होते हैं तब हमारे आध्यात्मिक प्रारब्ध का प्रथम चरण पूरा होता है। इस बार मैं यहाँ इसीलिए आया हूँ, और मैं पुनः आता रहूँगा। मैं चाहता हूँ कि अधिक-से-अधिक लोग आन्तरिक शान्ति तथा पूर्णता के मार्ग को जान सकें, समझ सकें।

– 8 नवम्बर 1980, मैन्ग्रोव माउन्टेन, ऑस्ट्रेलिया

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान 'SB Collect Online Donation Facility' के माध्यम से निम्नलिखित वेबसाइट द्वारा सीधे दिया जा सकता है – **https://www.onlinesbi.sbi/sbicollect/icollecthome.htm?corpID=2277965**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग**, **बिहार योग भारती**, **योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

माँ धर्मशक्ति के चरणों में

स्वामी श्रद्धामति सरस्वती

पृष्ठ 282, ISBN: 978-93-94604-02-5

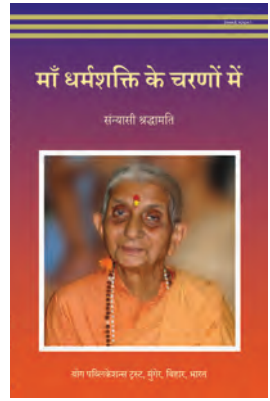

एक आदर्श संन्यासी का जीवन गुणों की खान के समान होता है, और स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती तो संन्यासी-शिरोमणी थीं। उनका सम्पूर्ण जीवन ही अपने गुरु, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संकल्पों की पूर्ति हेतु समर्पित रहा, इसी समर्पण ने उन्हें एक सच्चा, विशिष्ट संन्यासी बना दिया। इस पुस्तक में आप माँ धर्मशक्ति के इन्हीं उत्कृष्ट सद्गुणों और उनकी सुंदर अभिव्यक्तियों की झलक पायेंगे। इस जीवन चरित्र में माँ धर्मशक्ति के श्रीमुख से सुने और उनके संग अनुभव किये प्रसंग संकलित किये गये हैं तथा उनके आदर्श कार्यों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net
बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद
बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना
biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/
योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2023

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जुलाई 2022–जुलाई 2024	आश्रम जीवन प्रशिक्षण
जुलाई 1–दिसम्बर 31	योग चक्र अनुभव
सितम्बर 20–28	हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण
अक्टूबर 4–12	राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण
अक्टूबर 15–29	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण
नवम्बर 20–29	क्रिया योग एवं ज्ञान योग प्रशिक्षण

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

अप्रैल 15–जून 15	द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)
अगस्त 7–अक्टूबर 7	द्विमासिक यौगिक अध्ययन (हिन्दी)

कार्यक्रम

नवम्बर 4-12	मुंगेर योग संगोष्ठी 2

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ